UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180881

UNIVERSAL
LIBRARY

वैम्पायर

[उपन्यास]

•

मिर्ज़ा अज़ीम बेग चग़ताई

अनुवादक

एम० एल० पाण्डेय

पुस्तक स्थान

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

मुद्रक :—भगनकृष्ण दीक्षित, जगत प्रेस, इलाहाबाद ।

निवेदन

यह मिर्ज़ा अज़ीम बेग़ चग़ताई लिखित एक घटनाओं से ओत-प्रोत, रोमांचकारी, अत्यन्त रोचक कथा अथवा एक प्रताड़िता पर बलात्कार की हृदयविदारक एवं करुणापूर्ण कहानी है जो स्वयं उसकी ज़बानी इस पुस्तक में वर्णित है।

विषय-सूची

प्रथम भाग

१—मौत की नींद १
२—विपत्ति में ५
३—भयंकर निर्णय ६
४—विपत्ति के द्वार पर १५
५—सर्वनाश २३
६—भूतकालीन कथा २६

द्वितीय भाग

७—विपत्ति का प्रारम्भ ३६
८—सतीत्व का मूल्य ४४
९—रहस्य उद्‌घाटन ५१
१०—विपत्ति ६१
११—महान् विपत्ति ७३

तृतीय भाग

१२—वैम्पायर ८६
१३—विपरीत परिणाम ९९
१४—दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना १०७

प्रथम भाग

पहिला परिच्छेद

मौत की नींद

(१)

ऐ राजा-प्रजा के मालिक.....जग के सिरजनहार—मुझे वास्तव में नहीं मालूम था कि एक निहायत ही खौफ़नाक ज़ुल्म भी है जो किसी मासूम लड़की पर ढाया जा सकता है। मगर साथ ही यह भी कहूँगी, अपने निजी अनुभव के आधार पर, कि महान् पाशविक और पैशाचिक ज़ुल्मों के अनुभवों और संवेदनाओं के उपरान्त, अत्याचार यदि एक दार्शनिक के लिये नियति की उलझी हुई गुत्थी नहीं तो कम से कम एक मनोवैज्ञानिक के लिए, कदाचित अत्यन्त मनोरंजक समस्याओं का स्वरूप धारण कर ही लेते हैं।

मज़लूम (सताई हुई) लड़की में कितनी मनोभावनाएँ होती हैं ? वह किस भयंकर तथा घृणित विपत्ति में फँस जाती है ? किस तरह उसकी आत्मा शोक और पीड़ा के रौरव नरक में डाल दी जाती है। यह सभी तथा अन्य कितनी ही बातें मनोवैज्ञानिक के लिये अध्ययन की अति उपयुक्त सामग्रियाँ हैं।

(२)

हमारे ख़ान्दान में दो तरह की ख़ुशियाँ मनाई जा रही थीं। एक तो स्वयं मेरे विवाहोत्सव की और दूसरी मेरी ममेरी बहिन की विदाई की। पहिले मेरे विवाह की रस्म पूरी हुई और यह निश्चय हुआ कि बिदाई तब की जायगी जब मेरे पति पुलिस ट्रेनिंग स्कूल से पास होकर नौकरी पा जायेंगे।

मेरे विवाहोत्सव के सम्बन्ध में ख़ूब-ख़ूब मेहमानदारियाँ हुईं और उसके बाद हम सब झुण्ड के झुण्ड अपने मामा के यहाँ के लिये रवाना हुये। मामी साहिबा अपनी पुत्री सहित पहिले ही चली गई थीं।

यात्रा की तैयारियाँ की जाने लगीं। डेढ़ दर्जन स्त्रियाँ अपने कच्चे-बच्चों के साथ सामान सफ़र तैयार करने लगीं। हम लोग बारह बजे वाली गाड़ी से रवाना हुये। बारात का मामला ठहरा, सबके पास तीसरे दर्जे के टिकट थे और भीड़-भाड़ तथा जगह की कमी के कारण सब औरतें जल्दी में एक जगह न बैठ सकीं। गाड़ी में दो जनाने डिब्बे थे, इसलिये कुछ एक में बैठ गईं और शेष दूसरे डिब्बे में बैठा दी गईं।

(३)

ख़ुदा की शान कहिये कि तीन स्टेशन चल कर एक बारात और आई और कोई दो दर्जन औरतें उन दोनों जनाने डिब्बों में ठूँस दी गईं। नतीजा इसका यह हुआ कि जगह के मामले में आत्म-स्वार्थ का यह आलम हुआ कि जो जहाँ बैठा था, वहीं का वहीं जम कर रह गया ताकि कहीं कोई जगह न छीन ले। मैं गाड़ी के आख़िरी सिरे पर एक जगह पर अधिकार जमाये, बच्चे से कोने में तकिया लगाये इस तरह बैठी थी कि जब चाहूँ आराम भी कर सकूँ। साथ ही दूसरी स्त्रियाँ तनिक आगे बढ़

कर गाड़ी के दूसरे भाग में सिकुड़ी-सिकुड़ाई बैठी थीं। मैं ही सबसे ज्यादा आराम से थी। माता जी दूसरे डिब्बे में थीं और उस डिब्बे में और भी अधिक नीरस साथी सम्बन्धी थे जिनके साथ होने की वजह से यात्रा और भी कष्टदायक हो रही थी।

(४)

हमारी गाड़ी रात के ग्यारह के लगभग निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचती थी और यह बात मुझे पहिले से मालूम थी, जैसा कि मैं बता ही चुकी हूँ कि यह बड़ा ही नीरस सफ़र था। न कोई समवयस्क और न कोई सहेली कि जिसकी उपस्थिति के कारण यात्रा की सरसता बलात् ही अनुभव की जा सकती।

दिन भर की थकान और माँदगी—फिर जगह का कष्ट और यात्रा की नीरसता यह सब बातें ऐसी थीं कि मैं थकान और क्षोभ के कारण चूर होकर रह गई। भीड़ और बच्चों का शोर-गुल और तीसरे दर्जे की औरतों की बदतमीज़ियाँ ये सभी बातें ऐसी थीं कि उन्होंने सारे डिब्बे भर को नर्क बना दिया था और सबसे बढ़ कर यह कि गँवार औरतों के धकापेल से और भी तकलीफ़ हो रही थी।

खुदा-खुदा करके दूसरी बारात की स्त्रियाँ एक स्टेशन पर उतर गईं तो डिब्बे में ऐसा मालूम हुआ जैसे साँस लेने को जगह निकल आई हो। कुछ मुझे भी फैल कर बैठने का अवसर मिला।

किन्तु यह सुविधा क्षणिक ही सिद्ध हुई क्योंकि दूसरे स्टेशन पर बहुत-सी गँवार स्त्रियाँ और चमारिनें इतनी अधिकता से घुस आईं कि और भी जी घबराने लगा। चाची ने मुझसे कहा भी कि इधर आ जा, किन्तु मैं गँवार स्त्रियों के बीच में होने पर

भी अपनी जगह पर आवश्यकता से अधिक आराम से बैठी थी। अतः मैं वहीं जमी बैठी रही।

(५)

खाने का समय आया तो मैंने मन में ग्लानि का अनुभव करके इन्कार कर दिया, किन्तु चाची ने खाने के लिए विवश कर दिया। कहाँ तो भूख ही न थी, कहाँ जो खाने बैठी तो पराठे और दूसरी चीजें जो सामने आईं तो ख़ूब जी भर कर खाईं। खाना खाकर फिर अपनी जगह पर जल्दी से पहुँच गई कि कहीं कोई अधिकार न कर ले।

लगभग दस बजे रात तक का तो मुझे स्मरण है कि मैं जाग रही थी और सजग थी, किन्तु उसके बाद तनिक पैर फैलाने की जगह जो हुई तो ऐसी बेसुध सोई कि ख़ुदा की पनाह भाग्य का लिखा पूरा होना था, इसी बहाने सही।

अदृश्य के खेल भी अधिकतर संयोग का बहाना ढूँढ़ते हैं और बहुधा संयोग ही नहीं वरन् संयोग के बाद संयोग।

मैं बेख़बर होकर सो गई। यह पहिला संयोग था। दूसरा संयोग यह कि जिस तरफ़ मैं बैठी थी उस तरफ़ स्टेशन न आया। तीसरा संयोग यह कि उतरने वाली उतर गई और मैं मानो सामान सफ़र थी कि धरी की धरी रह गई और फिर इन संयोगों पर सबसे बड़ा संयोग यह कि ऐसी मौत की नींद सोई कि आगे जाकर जागना भी क़सम हो गया।

दूसरा परिच्छेद

विपत्ति में

(१)

मुझे नहीं मालूम कि रात के कै बजे थे। किन्तु सम्भवतः साढ़े बारह या एक का समय होगा। हवा में कुछ ठंडक थी और मैं चादर ओढ़े पड़ी बेखबर सो रही थी कि एक अत्यन्त हृदय-विदारक शब्द-ध्वनि से मैं चौंक पड़ी। किसी ने बड़ी ही सख़्ती के साथ ग्रामीण बोली में कहा—"ई कौन है ?"

चारों ओर भयानक और मनहूस अन्धकार छाया हुआ था। इस अन्धकार में आवाज़ "ई कौन है ?" अपनी अत्यन्त क्रूरता और सख़्ती के साथ मेरे मस्तिष्क में भाला मार कर अन्धकार में विलीन हो गई और आँख खुलते ही मेरे कानों में, बदबूदार वातावरण के अन्धकार में, दूरी पर इंजनों की सन-सनाहट और इक्का-दुक्का गाड़ियों की इधर-उधर घसीटने और छोड़ने की गड़गड़ाहट सुनाई दी। सम्भवतः मुझे आँखें खोलते ही ऐसा प्रतीत हुआ कि अन्धकार एवं रात्रि का भयंकर देव "ई कौन है ?" भाला मार कर अँधेरे में गोता मार गया है। मेरी दृष्टि एक खिड़की में गोल-गोल वस्तु पर पड़ी और पहिले इसके कि मैं कुछ सोच या समझ सकूँ एक देहाती किन्तु निहायत ही सख़्त आवाज़ ने फिर वही शब्द दोहराये "अरे ई कौन है ?"

मैं उठ बैठी और शीघ्रता से सिरहाने से अपना बुरक़ा निकाला। मैं किस तरह नाशकारी सन्नाटे और अन्धकार के कारण उठी हूँ कि वर्णन नहीं कर सकती। मेरे मुँह से निकला "यह कौन स्टेशन है ?" स्टेशन का नाम मालूम करके

मेरे मुँह से एक चीख-सी निकली, मुझे सावधान करने वाला वास्तव में रेलवे का नौकर भंगी था और उसने स्टेशन का नाम बता कर कहा, "उतरो गाड़ी से", गाड़ी गोदाम में लगी हुई है। इसमें सोने की आज्ञा नहीं है।

(२)

वाक़या साफ़ था, यों मैं सोती हुई बहुत आगे चली आई थी। यह भी मुझको मालूम था कि यह गाड़ी इस जंकशन पर पहुँच कर खतम हो जाती है। इंजन ने गाड़ी को प्लेटफ़ार्म से खींच कर "यार्ड" में लगा दिया था। सारी गाड़ी खाली थी और मैं इस गाड़ी के उस भयानक अन्धकार में अकेली मुसाफ़िर थी।

या मेरे अल्लाह अब मैं क्या करूँ ? कैसे वापस जाऊँगी ? मेरे पास तो एक कौड़ी भी नहीं ! यह विचार मस्तिष्क में आने भी न पाये थे कि उस भंगी ने मुझे चुप देखकर एक और लताड़ दी। "शीघ्र उतरो, गाड़ी से, कौन हो तुम ?"

मैंने दो शब्दों में उसे अपनी विपत्ति सुनाई और वह भी ऐसे परेशान स्वर में जिससे मुझे आशा हुई कि यह मेरे साथ सहानुभूति प्रकट करेगा अर्थात् मैंने उससे इस बात की आशा की जिसका नाममात्र के रेलवे कर्मचारियों का कोई सम्बन्ध नहीं। अतः उसने मेरी बात सुन कर निहायत ही "रेलवीय" सादगी से कहा—"हम कुछ नहीं जानते, तुम उतरो शीघ्र।"

मैंने फ़क़ीरों के से स्वर में कहा—"तुम मेरे घर किसी बाबू से कह कर तार दिलवा दो तो आजीवन तुम्हारी आभारी रहूँगी।" वह बोला—"हम नहीं जानते तार-वार, हम नहीं जायँगे लौट कर स्टेशन, तुम स्वयं चली जाओ.....वह सामने स्टेशन है, वहाँ किसी बाबू से कहना।"

इतना कह कर वह कुछ बड़बड़ाने लगा। मेरे पास कुछ सामान तो था ही नहीं, विवश होकर उतरी। एक तो प्लेट-

फार्म न था फिर अँधेरा। किन्तु जिस तरह बन पड़ा उतरी। मेरे उतरते ही भंगी ने फिर उँगली उठा कर कहा—"वह देखो स्टेशन है, रोशनी चमक रही है।"

(३)

मैंने चारों ओर की कालिमा और अन्धकार पर ध्यान दिया। भंगी के कहने पर स्टेशन की ओर दृष्टि डाली। एक भयंकर भूत था या सिगनल। जो अपने शून्य लाल नेत्र से मुझे घूर रहा था। किस क़दर मनहूस था वह।

मरता क्या न करता, अब सोचा कि क्या करूँ। कहीं पर कोई रास्ता न दिखाई पड़ता था। मैं विवश होकर स्टेशन के प्रकाशों की ही ओर बढ़ी थी कि भंगी को शायद मेरी लाचारी पर दया आ गई। वह दूसरी ओर चला लेकिन रुक गया और पुकार कर मुझे रास्ता बतलाया कि इधर होकर जाओ। मगर उसके बाद ही वह लौटा और मेरे निकट आकर मनुष्यता तथा सहानुभूति के नाते हाथ के इशारे से मुझे बतलाया और बोला, "देखो वह सामने मालगोदाम के बाबू का क्वार्टर है। वहाँ जाकर तुम कहना वह तुम्हारी जाति के (अर्थात् मुसलमान) हैं, और तुम्हारा सहायता करेंगे।"

मैं यह सुन कर प्रसन्न होगई। मैंने विनम्र होकर कहा—"भैया तू इतना कर कि मुझे वहाँ तक ज़रा पहुँचा दे।" उसको तैयार देख कर मैंने जब पूछा कि बाबू के घर स्त्रियाँ भी हैं या नहीं तो उसने उत्तर दिया—"पत्नी, बाल ···बच्चे आदि सब हैं।"

मैं खुश-खुश अब मेहतर के साथ चली। वह मेरी खुशामद से प्रभावित होकर आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे। थोड़ी ही दूर चल कर मैं एक तार से उलझ कर गिरी। वह बोला, "देखो माई·····देखकर।

जल्दी से उठी। मेहतर को संतोष दिलाया कि चोट नहीं लगी और फिर उसी तरह चली। अथवा वह आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे। अपनी लाचारी और मुसीबत तथा संयोग पर ज़ोरदार लेक्चर देती रही कि कहीं यह अपना विचार बदल कर वापस न चला जाय।

(४)

तार और रेल की पटरियाँ पार करके मेहतर ने एक क्वार्टर के सामने ला खड़ा किया। एक मैला-सा परदा दरवाज़े पर लटका हुआ कह रहा था कि इसमें स्त्रियाँ भी रहती हैं। यह विश्वास कितना संतोषप्रद था।

मेहतर ने "बाबू साहब" के साधारण सम्बोधन को ऊँची आवाज़ से ऊँचा उठाया। दूसरी ही आवाज़ पर भीतर से उत्तर मिला। मैं प्रसन्न हुई, ऐसा मालूम हुआ कि लोग अभी जाग रहे हैं। पद-ध्वनि, लालटेन का वह प्रकाश जो द्वार के छिन्दों तथा दरवाज़ों में से होकर टाट के पर्दे से छनता हुआ मालूम दिया! और फिर द्वार का हिलना। इस प्रत्यक्ष सुखद, किन्तु वास्तव में भंयकर, भूमिका के बाद द्वार खुला। एक नवयुवक लालटेन लिये हुये निकला। लालटेन ऊँची करके, बिना पूछे-गछे हुये उसने मेरी ओर देखा। मेहतर ने बड़े विस्तार के साथ मेरी विपत्ति का वर्णन किया और सिफ़ारिश की कि वह मुझे आराम से मेरे घर पहुँचाने का प्रबन्ध करा दें और इसके लिये तार भी दिलवा दे।

इतना सुनते ही उस नवयुवक ने बड़े प्रेम से पर्दा उठा कर मेरे लिये रास्ता छोड़ दिया और मुझसे अन्दर जाने को कहा। मैं अन्दर गई और वह मेहतर से बातें करने लगा।

तीसरा परिच्छेद

भयंकर निर्णय

(१)

मैं अन्दर जो आई तो एकदम से ठिठक कर रह गई। एक छुटा सा मकान था कि मानों पिंजड़ा। सामने तीन या चार दरों का बरामदा और कमरा और उस कमरे के द्वार पर एक और व्यक्ति चौखट पकड़े खड़ा था। कमरे के अन्दर तेज़ रोशनी थी, किन्तु औरतों का नाम-निशान तक नहीं।

मैं घबड़ाई कि यहाँ तो स्त्रियाँ नहीं हैं। और खड़ी की खड़ी रह गई। सामने एक नवयुवक खड़ा था और पीछे से द्वार बन्द होने की आवाज़ ने मानों ज़ोर देकर कहा कि इस ओर भी एक मर्द है। द्वार बन्द करके वह व्यक्ति भीतर आया। मेरा हृदय बैठ सा गया। बड़ी घबराहट सी मालूम हुई। या मेरे अल्लाह! यहाँ सिवाय दो नवयुवकों के और कोई भी नहीं। बरामदे में एक पलंग बिछा हुआ था। मुझे उस पर बैठने का इशारा करके दोनों कमरे में चले गए और कुछ बातें करना शुरू किया। किन्तु शीघ्र ही दोनों लालटेन लेकर बाहर आये और बहुत ही बेहूदा तरीक़े से मेरे सामने खड़े होकर लालटेन से मेरा अन्वेषण करने लगे। मैं बुर्क़ा पहिने खड़ी थी और वह दोनों मुझे घूर रहे थे। वह भी इस प्रकार कि मैं घबराहट के कारण विकल हो गई।

एक ने दूसरे से अँग्रेजी में कुछ कहा जो मैं बिल्कुल न समझी, किन्तु इतना अवश्य समझ गई कि मेरे हाथों के बारे में कुछ बात थी। अतः मैंने शीघ्र अपने हाथ भीतर कर लिये और

कुछ हृदय को दृढ़ करके कहा,—"मुझे स्टेशन पर पहुँचा दीजिये और चलकर तार दिलवा दीजिये।"

इसके उत्तर में वह नवयुवक जिसने द्वार खोला था बड़े ही अप्रिय स्वर में बोला "तुम कौन हो?" मैंने एकदम से घबरा कर कहा, "मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ।"

दूसरा जो था वह बड़ी सज्जनता से मधुर स्वर में बोला "तुम संतोष रखो। कमरे में चली जाओ। हम दोंनो बाहर चले जाते हैं, औरतें भी आ ही जाती हैं। घबड़ाओ मत, इसलिये पूछते थे कि स्त्रियों को बुलायें। यदि कहोगी तो अभी स्टेशन पहुँचा देंगे और नहीं तो सामने के क्वार्टर से स्त्रियों को बुलाये लेते हैं। तुम निश्चिन्त होकर कमरे में जाकर बैठो और कमरा अन्दर से बन्द कर लो। हम अभी स्त्रियों को बुलाते हैं। धीरज रक्खो हम भी आखिर शरीफ़ और भले आदमी हैं।"

इतना कह कर उसने रास्ता छोड़ दिया तथा उसके अन्तिम वाक्य से मैं बड़ी लज्जित हुई। वाक्य व्यंग्यपूर्ण-सा प्रतीत हुआ। मैं सीधी कमरे में चली गई और उन्होंने स्वयं पट भेड़ दिया और फिर कहा "अभी सबी स्त्रियाँ आती हैं। अभी तार देते हैं।"

(२)

मैं कमरे में पहुँची, भीतर एक तख्त बिछा हुआ था। दो पलंग थे उन पर बिछौने बोछे हुये थे। समाने खूंटी पर कपड़े टंगे हुये थे। मैंने इधर-उधर दृष्टि डाली किन्तु कोई ऐसी वस्तु न दीख पड़ी जिससे स्त्रियों की उपस्थिति का संदेह हो सकता। पलंग पर बैठ गई किन्तु बैठते ही मैंने समस्त शरीर में विचित्र प्रकार की सनसनाहट का अनुभव किया। मुझे मृत्यु की ठंडक बैठती सी लगी। मैंने विचारा कि कमरे में मुझे न आना चाहिये

था। यह तो भूल पर भूल हुई किन्तु मैं विवशता के कारण बैठ गई और स्वभावतः मैंने बाहर की ओर कान लगाये कि क्या हो रहा है, परन्तु वहाँ तो वही अर्द्ध-रात्रि की नीरवता थी जिसमें रह-रह कर इजनों की सनसनाहट या गाड़ियों की गड़-गड़ाहट के अतिरिक्त कोई दूसरी आवाज न थी। मैंने सोचा कि बाहर अब कदाचित कोई नहीं, किन्तु शीघ्र ही मुझे सन्देह हुआ कि बाहर परामर्श सा हो रहा है; अथवा बरामदे में चुपके-चुपके बातें हो रहीं हैं।

धीरे से मैं उठी, दूसरे दरवाजे से चारपाई अड़ी हुई थी। चुपके से उसके नीचे होकर मैं दरवाजे से कान लगा कर सुनने लगी।

(३)

जो कुछ भी मेरे कानों ने सुना वह मेरे रक्त को स्थिर कर देने के लिये पर्याप्त था। मेरी मर्यादा, मेरा सतीत्व, मेरा सर्वस्व संकट में था। में उसी तरह कान लगाये सुन रही थी।

मैंने सुना। खुदा की पनाह। मैंने अपने कानों से सुना कि उन दोनों मैं यह समस्या उपस्थित थी कि उन दानों में से कौन मेरे.....।

खुदा की पनाह! एक नवजवान और बेकल लड़की की इज्जत खराब करने के लिये दो रक्त के प्यासे मेरे खिलाफ़ घृणित षड़यन्त्र रच रहे थे, मैंने क्या सुना। शब्द न तो दुहराये जा सकते हैं न दुहाराने के योग्य हैं, बल्कि सुनने के योग्य भी नहीं। वह शब्द जो मनुष्यता के लिये अपमान-जनक तथा लज्जापूर्ण हैं। कलुषित हृदय, और नीच प्रकृति के दुराचारी नवयुवक, संसार के महान् घृणित कार्य के लिये षड़यन्त्र कर रहे थे।

मैं उसी प्रकार कान लगाये सुन रही थी, और मैंने सुना कि साथ ही पवित्रता, सदाचारिता तथा लज्जा एवं साधुता की असंख्य समस्याएँ भी उपस्थित हैं। मालूम हुआ कि महान् अत्याचार के लिये भी लज्जा व संकोच और विशुद्धता ने कुछ नियम लागू किये हैं। एक अत्याचारी नियमबद्ध है और वह लज्जा व संकोच तथा पवित्रता का क़ायल है। लज्जा व संकोच का भाव उसमें हद से ज्यादा मौजूद है! उस पाकबाज़ी और हयादारी के कौनसे नियम हैं?

(४)

मैंने ध्यान से इन नियमों को सुना तथा उन पर निर्मित पूर्णतया तर्क-वितर्क भी सुना। मुझे ज्ञात हुआ कि इन दोनों नवयुवकों में से यदि एक इतना निर्लज्ज तथा मनुष्यता का कलंक है जो प्रस्ताव कर रहा है कि दोनों के दोनों इस खौफ़नाक़ जुर्म के भागी हों और दस प्रकार प्रमाणित कर दें कि शैतान कोई चीज़ नहीं, पाशविकता कोई वस्तु नहीं, दरिन्दगी और पशुता बेकार की बातें हैं और जो कुछ भी है वह हम हैं!..... किन्तु ज़रा ध्यान दीजिये कि यदि एक इतना निर्लज्ज तथा पतित और नीचता का सजीव मूर्ति था तो दूसरा सर्वथा लज्जाशील और पवित्रता की साकार प्रतिमा। उसने इस प्रस्ताव की पाशविकता को एक विचित्र ढंग से घोषित किया! उसने दूसरे पर घृणा की वर्षा की तथा उसको दार्शनिक ढंग से कुछ नियम स्मरण कराये। अथवा उसने अपने शैतान दोस्त से कहा कि उसके नज़दीक ऐसी स्त्री आदरणीय हो जाती है और उसी हद तक आदर के योग्य है जिस हद तक कि विवाहिता स्त्री हो सकती है। अर्थात् मित्र का हस्तक्षेप उसके लिये यानी मित्र के लिये हर पतिता, कलंकनी या हर प्रताड़िता स्त्री को वही सुयोग

तथा उच्च पद प्रदान करती है जिस पद का केवल विवाहिता स्त्री को जनता ने अधिकरी माना है। सारांश, उसकी विशुद्धता तथा लज्जाशीलता की फ़िलासफ़ी का तत्त्व यह था कि यदि किसी पतिता या कलंकिनी अथवा प्रताड़िता पर मित्र की कृपादृष्टि हो जाय तो उसके निकट वह उसकी विवाहिता हो गई और इसलिये वह आदर के योग्य है। और शराफ़त वास्तव में इसी का नाम है।

(५)

या मेरे अल्लाह ! मेरी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ लुप्त हो गईं। मैं वह सुन रही थी जिसके सुनने से अच्छा है कि किसी अबला के कानों में गरम-गरम शीशा पिघला कर डाल दिया जाय। कदाचित् यह मेरे भाग्य का एक अंश था। अपने ही सतीत्व नाश तथा तबाही का भयंकर प्रस्ताव सूनूँ और उस पर तर्क-वितर्क हो और यह सब कुछ मेरे कानों में पहुँचे अतः यह सब कुछ मेरे अनोखे और ईर्ष्या के योग्य भाग्य का एक अंश था।

मैं कदाचित् एकदम से पागलों की भाँति चीखने का इरादा कर रही थी। सन्देह हो रहा था कि शायद घोर पश्चाताप तथा बेचैनी के कारण अचेत हुई जा रही हूँ। मस्तिष्क में मानों कोई लोहार अपना घन चला रहा था जिसके आघातों से हृदय चूर-चूर हुआ जा रहा था।

एकदम से मेरी आँखों के सामने जैसे घनघोर घटाएँ घिर आईं। पर्दे को चीर कर भयानक अन्धकार आँखों के अन्दर घुस गया। रात का भयंकर और मनहूस अन्धकार मेरी भाग्यहीनता सहित कुछ सुनते ही मेरी आँखें चीर कर घुस गया। जो कुछ भी सुना उसके सुनते ही सिर चकरा गया।

ज्ञानशून्य तो थी ही मुर्दनी भी छा गई। वह मुर्दनी जो एक निरपराध अभियुक्त के ऊपर मृत्यु का निर्णय सुन कर छा जाती है।

पाशविकता और पैशाचिकता मानों मनुष्यता और सज्जनता को मुँह चिढ़ा रही थी।.....मैंने अपने भाग्य का खूनी फ़ैसला स्वयं अपने कानों सुना।

किन्तु धन्यवाद है उन नरपिशाचों को जो अपने आंतरिक अपकार और पाशविकता की अपेक्षा अतिथ्य-सत्कार के नियमों के पक्षपाती थे। एक मेहमान था और दूसरा मेज़बान। तर्क का अन्त इस विषय पर हुआ कि मेज़बान ने केवल मेहमान के "लज्जा व संकोच की फ़िलासफ़ी" को ही न समझ लिया (जिसके अनुसार हर पतिता अथवा चरित्रभ्रष्टा या प्रताड़िता मित्र की विवाहिता हो सकती थी) वरन् साथ ही मेहमानदारी के उदाहरण के आधार स्वरूप तथा पवित्र मेहमान के प्रति सत्कार तथा मेहमानदारी के कर्तव्यों को पूरा करने के अभिप्राय से इस प्रकार छुटकारा पाया कि स्वयं मेरे अस्तित्व से बेखबर होकर मेहमान से कह दिया—"तुम मेरे मेहमान हो, अतः तुम जानों तुम्हारा काम।"

फ़ैसले का सारांश यह था जो मैंने स्वयं कानों से सुना। अब यह मेहमान हैं और मैं हूँ।

चौथा परिच्छेद

विपत्ति के द्वार पर

(१)

उधर मैंने यह आखिरी फ़ैसला सुना और उनके उठने की आहट महसूस की, और इधर मैं शीघ्रता से चारपाई से रेंग कर निकली। पृथ्वी दृढ़ तथा आकाश सुदूर। इस तरह की भयंकर परिस्थिति मेरे लिये अजब थी चूँकि नई थी। मैंने हर ओर से मानों संकट का आभास किया। कमरे की सख्त दीवारों से मेरी नज़रें टकरा कर लौट आईं और मैंने लालटेन की ओर देखा। यकायक मुझे झुनझुनी सी चढ़ आई। इस छोटे कमरे में लालटेन का प्रकाश! मुझे मालूम हुआ कि जैसे नर-पिशाच मेरी विवशता तथा दुर्भाग्य पर हँस रहा है। यह प्रकाश नहीं है बल्कि एक घृणित तथा भयंकर रूप में एक परिहास है।.....एक घृणित अविच्छिन्न परिहास की मनहूस कल्पना!.....अत्यन्त भयंकर।

(२)

तन-बदन में भय तथा धड़के की विद्युत् तैर गई। एक कम्पन समस्त शरीर में व्याप्त हो गया। श्वास सीने में रुकती-सी प्रतीत हुई और दम घुटता-सा मालूम हुआ।

एकदम से मैंने हाँफ कर उस कमरे की खिड़की खोली, जो घर के पीछे की ओर का अकेला मार्ग मालूम होता था। खिड़की खोल कर मैं उसमें से बाहर कूदने ही को थी कि बिजली की तड़प के साथ एक फ़ौलादी पंजा अन्धकार चीरता हुआ मुझ तक झपट पहुँचा।.....एक चीख के साथ मेरी ओर से

सशक्त खींच-तान, और इधर से एक बलिष्ट पुरुष के फ़ौलादी हाथ का झटका, एक ज़ोर के धक्के से मैं चीख कर पलंग पर गिरी और पूर्व इसके कि मेरे मुँह से दूसरी चीख निकल सके या मैं सँभल सकूँ, मेरा गला ख़ूनी पंजे की गिरफ़्त में था।

आक्रमणकारी ने दूसरे हाथ से खिड़की जो बन्द करने की चेष्टा की तो मैं फड़फड़ा कर पंजे से निकल गई। किन्तु खिड़की मज़बूती से बन्द करते ही यह जल्लाद मेरे सिर पर!

मेरे सामने एक तिपाई आ गई और अब जान पर खेल कर मैंने तिपाई उठाई और उसका शस्त्र बना कर मैंने ख़ूनी नेत्रों से अपने आक्रमणकारी को देखा। भय की उपेक्षा मेरे समस्त शरीर में क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित थी और मैं मरने-मारने पर तुली हुई थी। तिपाई रूपी हथियार तान कर मैंने डपट कर कहा, "बदमाश .....दूर हो, सिर फोड़ दूँगी, ख़बरदार जो आगे बढ़ा.....नीच कहीं का।"

मेरा असाधारण साहस और मुझे इस प्रकार प्रस्तुत देख कर वह कुछ झिझक-सा गया। कहने लगा—

"तुम्हारा चीखना, गुल मचाना व्यर्थ है।"

आँखें निकाल कर, दाँत पीस कर मैंने कहा, "कायर कहीं का, नीच, कैसा चीखना और कैसा गुल मचाना, होश में आ, भेजा फोड़ दूँगी, तूने समझा क्या है?"

उसने कहा, "मालूम होता है तुम यों न मानोगी।" इतना कह कर कुछ आगे बढ़ा।

"ख़बरदार!" मैंने डाँट कर कहा और तिपाई को ऊँचा किया। किन्तु क्षणमात्र में उसने अत्यन्त फ़ुर्ती के साथ मेरे ऊपर आक्रमण किया। मैंने सारी शक्ति से तिपाई को दोनों हाथों से

मज़बूती से पकड़ कर उसके सिर पर एक ज़बरदस्त आघात किया। उसने दोनों हाथों से तिपाई को रोका। किन्तु मेरा हाथ भरपूर पड़ा था जिससे उसके तिपाई की पूरी-पूरी चोट लगी। वह चकरा कर बाईं ओर गिरा, तड़प कर उसने उठने की चेष्टा की किन्तु हाथ-पैर मार कर रह गया। मैंने ध्यान से अब उसे चारपाई पर खड़े-खड़े देखा। करवट के बल औंधा पड़ा हुआ था। एकदम से मैं सुन्न हो उठी, क्योंकि उसके सिर से ख़ून बह रहा था। मैं कुछ भयभीत-सी हो गई। "कहीं मर तो नहीं गया", स्वभावतः मेरे दिल में ख़याल आया। मैंने चारपाई पर बैठ कर उसको झुक कर देखा। अब मैंने विचारा कि मुझे क्या करना चाहिये, यह तो मैं जानती ही थी कि मरा तो नहीं, हाँ अचेत अवश्य है, और मौक़ा अच्छा है कि मैं खिड़की खोल कर भाग जाऊँ। यह विचार कर मैं तेज़ी से पलंग पर से उतरी और बढ़ी कि बराबर वाले पलंग पर चढ़ कर खिड़की खालूँ और बाहर कूद जाऊँ।

(३)

मैं उस ओर बढ़ी ही थी कि उसके मुख से कुछ फँसी-फँसी तथा श्वास घुटने की सी आवाज़ आने लगी। मैं रुक गई और मुड़कर देखा कि श्वास बार-बार झटके खा रही है "मर रहा है।" मैंने घबड़ा कर दिल में सोचा और समीप आकर कुछ परेशान होकर उसे देखने को झुकी।

मेरा निकट आकर झुकना था कि एक छलाँग के साथ उस ढागी ने उछल कर मुझे दाब लिया। मेरे मुँह से चीख निकलनी दूभर हो गई और आहनी पंजे की उँगलियों से मेरा गला घुटता सा प्रतीत हुआ। किन्तु मैंने भी विवश होते-होते उसकी उँगली में ज़ोर से काट खाया ·····और उसने अब बड़ी निर्दयता से मुझे हर तरह से मजबूर करके और भी ज़ोर से मेरा गला

मैं प्राण दे दूँगी और किसी को मालूम भी न होगा कि मेरे माता-पिता कौन थे। अतः यह सोच कर मैं मौन ही रही और कुछ न बोली। मुझे चुप देख कर उसने पूछा, "तुम्हारा विवाह हो गया है ?"

मैंने कपड़े में मुँह छिपाए हुए नेत्र के कोण से उसकी ओर ध्यान से देखा। उसने फिर यही प्रश्न किया तो मैंने कुछ सोच कर सर हिला कर नहीं में जवाब दिया कि विवाह नहीं हुआ है।

तत्पश्चात् मेरे नगर का नाम पूछा—मैं कुछ न बोली तो उसने पूछा—"तुम कहाँ जाना चाहती हो।" इसके उत्तर में मैंने उस स्थान का नाम बताया, जहाँ जा रही थी। और कहा कि—"परमात्मा के लिये मुझे पहुँचा दीजिए।"

मेरी विपत्ति के आरम्भ की यह संक्षिप्त भूमिका थी।

(४)

दुराचारी तथा मक्कार की चालाकियाँ! खुदा की पनाह! वह बातें जो अब उसने मुझसे करनी आरम्भ की मैंने सुना तो क्या, कहीं पढ़ी भी न थीं। शब्द थे कि बर्छियाँ! हृदय चूर-चूर हो गया। संताप से पसीना-सा आ गया। अश्लील तथा बाजारू प्रेम के दावे और तमाम वही घृणित शब्द थे, जो प्रायः आजकल के सफल कहानी-लेखक अपनी कहानियों में दिखा सकते हैं!

यह समस्त घृणित वार्तालाप उसकी ओर से थी, और मेरी ओर से सिवा मेरी अपनी पाकबाज़ी और ईमानदारी तथा खुशामद और खुदा के वास्तों के आलवा और क्या धरा था। और वह भी इस ढंग से जो एक निर्दयी के हृदय में दया का संचार कर सकते हैं।

मेरी परिस्थिति का अनुमान लगाइए। एक नवयौवना लगन-बन्धन हो जाने के बाद अथवा पाणि-ग्रहण के उपरान्त अपने नारीत्व की पवित्रता के साथ अपने आने वाले सुखद जीवन पर किस शांति से नज़र डालती है। संसार की सब भावनाएँ भूल कर वह एक विचित्र आनन्दमय तन्मयता में लीन हो जाती है। भावी जीवन का आनन्दित दृश्य उसके नेत्रों में फिर जाता है। वह प्यारा घर जिसमें वह और उसके सरल हृदय पति दोनों आराम-चैन के साथ एक शान्तिमय जीवन व्यतीत करेंगे। यदि ऐसी अबला पर यह मुसीबत आ पड़े तो उसकी दशा ऐसे अवसर पर क्या होगी ? भावी जीवन का विचार ऐसे अवसर पर फूट-फूट कर रोने के लिये मजबूर करता है। फिर एक वह लड़की जिसका विवाह हो चुका हो। मैं सोच रही थी कि मेरा विवाह न हुआ होता और मैं किसी और की न हो चुकी होती तो मैं इस जंगली पशु को ऐसे अवसर पर ग्रहण कर लेती। निःसन्देह इसे राज़ी कर लेती कि तू मुझे चाहता है तो अभी दो साक्षियों को बुला और मुझसे निकाह कर ले। किन्तु वर्तमान परिस्थिति आवश्यकता से अधिक दुखप्रद थी। मुझे अपनी मर्य्यादा नहीं, बल्कि उसकी मान-मर्य्यादा को सुरक्षित रखना था, जिसकी मैं हो चुकी थी। अब वर्तमान परिस्थिति में यह असम्भव था कि मैं अपनी और इस अत्याचारी की इज्ज़त एक कर लूँ। मैं सोचती थी कि ऐ ख़ुदा! किस प्रकार इस अत्याचारी से अपना पीछा छुड़ाऊँ ?

सारांश यह कि उसने मेरी प्रार्थना के उत्तर में विवाह कर लेने का वचन दिया, वह कहता था कि विवाह फिर हो जायगा, और मैं कहती थी पहले विवाह होना चाहिए। मैं जानती थी कि यह मक्कार है और वह जानता था कि यह अय्यारा है। सवेरा होते ही और छूटते ही यह फिर काहे को हाथ आवेगी।

(५)

ख़ैर इस तर्क और वार्तालाप का यह परिणाम निकला कि उसकी बातों का मुझे कठोर होकर उत्तर देना पड़ा। उसकी प्रत्येक चालाकी का मैं उत्तर दे चुकी थी। और अपनी बात पर अड़ी थी। अब मुझे सख्ती करनी पड़ी, इसका अनिवार्य्य परिणाम उसकी तरफ़ से सचमुच सख्ती का हुआ। मेरी झिड़की के उत्तर में उसका लोहित पंजा मेरी ओर बढ़ा। मेरी ओर से भला क्या खींच-तान होती। उसने अपनी उँगलियाँ मेरा गला घोंटने के लिए हलक़ पर जमा दीं। अब मुझे गिरा कर इस ज़ोर से गला दबाया कि सचमुच मेरी आँखें निकल पड़ीं। किन्तु पकड़ ढीली होते ही मैंने जो ज़ोर लगाया तो उसने मुझे क़ाबू में करके और मेरा गला दबा कर अब बुरी तरह मारना शुरू किया।

किन्तु मेरे इरायदे में अब तक कोई कमी न थी। मैंने अपनी बाईं ओर चाक़ू पड़ा देखा। मेरा हाथ मुक्त था और मैंने इस मजूबरी की हालत में चाक़ू झपट कर भर-पूर उसके मुँह पर मारा। किन्तु मैं अभागी थी, पहले तो बाएँ हाथ से आघात और फिर कहाँ मैं दुर्बल लड़की और कहाँ वह बलिष्ठ युवक। उसने सर एक तरफ़ को कर लिया और चाक़ू की नोक उसके कान को छीलती हुई निकल गई। उसने चाक़ू छीनकर दूर फेंका और फिर जो मेरे मुँह में कपड़ा ठूँस कर बन्द करके मुझे बुरी तरह मारना शुरू किया है, तो सचमुच मुझे मारते-मारते भुर्ता कर दिया। किन्तु मेरी फिर भी वही खींचा-तानी थी। यहाँ तक कि उसने तंग आकर हाथ मरोड़कर मेरी कलाइयाँ पीछे की ओर दोनों हाथ करके भली-भाँति दुपट्टे से बाँध दीं।

मेरे दोनों हाथ पीछे की ओर बँधे हुए थे और मुँह में कपड़ा इस बुरी तरह ठूँसा हुआ था कि साँस बन्द हुई जा रही थी।

सारांश, वास्तविक पशुता, शील्व पर केवल अ[illegible] के कारण विजयी हुआ। जब एक दुर्बल और विवश शरीर को मार-कूट से अधमरा करके जकड़ दिया गया, गला घोंट दिया गया, मुँह में कपड़ा ठूँस कर श्वाँस की प्रगति रोक दी गई........ साँस घुटने लगी, सिवा सर पटकने के दूसरा कोई चारा न रहा। अत्यंत क्षोभ तथा साँस के घुटने से प्राण-पखेरू उड़ते हुए-से प्रतीत हुए.... ... ...आँखों में चक्कर आ गया। अंतिम बार मैंने साँस की तकलीफ़ के कारण पृथ्वी पर सिर दे मारा ....साँस और भी ज़्यादा घुटी ....आँखें निकली पड़ती थीं, तथा मैं अचेत हो गई और वह मसल हुई कि जीते जी मर गई।

मेरी आँख खुली और मुझे चेत हुआ तो मैंने उस पिशाच तथा अत्याचारी को अपनी बग़ल में उपस्थित पाया.......अपने सर्वनाश पर मेरे मुख से एक कमज़ोर सी चीख़ निकली और मैं फिर अचेत हो गई।

वह सारी तक़लीफ़ें जो एक अत्याचारी दे सकता है, मुझे दी जा चुकी थीं।

पाँचवाँ परिच्छेद

सर्वनाश

(१)

"अत्याचारी !"

उफ़ ! यह कितना भयानक और दुःखद शब्द है ! अत्याचार स्वयं कदाचित् पाशविकता तथा पैशाचिकता की एक अत्यन्त भयंकर चीख़ है !

अशुद्धता तथा अपवित्रता का दैत्य·····पाप तथा पतन का रक्तिम भूत !·····अपनी पाशविकता की तरंग में आकर अपना बनावटी तथा घृणित नृत्य आरंभ करता है !·····या एक अत्याचारी इस भयंकर अपराध का भागी होता है !

निःसन्देह यह अत्याचार, तथा यह कुकर्म, पाप तथा नीचता के घृणित देवता का नीचता से परिपूर्ण नृत्य है।

समस्त सृष्टि का अमर प्रकाश·····लुप्त हो जाता है, जब बदचलनी और खूँख्वारी एक अत्याचारी के पंजे में किसी निर्दोष बालिका को समर्पित कर देती है।

प्रतीत होता है कि जैसे ईश्वरीय न्याय उठ गया। अर्थात् पाप ने पुण्य पर विजय पाई ! ब्रह्मा की शक्ति कदाचित् क्षीण हो गई ! अतः क्या कारण कि नीलाम्बर उसी प्रकार अपने नियत पर स्थित है। सृष्टि के संचालन में कोई अंतर नहीं हुआ ! संसार उसी भाँति अपने कार्य में लिप्त है; ईश्वरवादी उसी भाँति रो रहा है और अत्याचारी उसी प्रकार प्रसन्न, और सुखी है !

संसार की वही गति है ! किसी वस्तु में कोई अन्तर नहीं हुआ ! मानो यह प्रलयकारी घटना अपने परिणामों और प्रभावों के अनुकूल कदाचित् मुझ तक ही सीमित होकर रह गई थी। मेरी तो दुनिया बदल गई·····मान-मर्य्यादा गई·····कहीं की न रही, किन्तु संसार वही संसार रहा·····लेकिन प्रश्न यह है कि क्या मेरे लिए भी ? ·····कदापि नहीं !

अपने सतीत्व के लुटते ही मैं स्वयं संसार से एक अलग वस्तु होकर रह गई। स्वयं मैं संसार के लिये भार बन गई ! कुल का कलंक हो गई ! पिता की सम्पत्ति गई तो पति कि मर्य्यादा लुट गई, किन्तु दुराचारी ?·····दुराचारी स्वयं इन चिन्ताओं से

मुक्त और स्वतंत्र है। वह शैतान की संतान और पिशाच का उत्तराधिकारी है, उसका यह कार्य स्वयं उसके अपवित्र जीवन का वास्तव में एक महान् घटना गिनी जाने की वस्तु है।

पाशविकता की चौखट पर शीश नवाना एक दुराचारी का धार्मिक कर्त्तव्य है। और इस भेंट के लिए यदि कोई उपयुक्त उपहार हो सकता था तो वह मेरा सतीत्व तथा मेरी मर्य्यादा थी .....जिसे एक धर्मशील पुजारी ने दुराचार तथा अत्याचार के बल से प्राप्त करके पाशविकता के मंदिर पर चढ़ा दिया।

(२)

मैंने देखा कि सुचिता मुझसे विमुख हो गई है!.... ..... मनुष्यता स्तब्ध है.....निर्दोषिता को फाँसी दे दी गई है तथा उसकी लाश को अपवित्र एवं घिनौने पशु झिंझोड़ रहे हैं! गला घोंट कर भलाई तथा नेकी के दूत को मार डाला गया है और उसकी दुर्गन्धित लाश में कीड़े बिजबिजा रहे हैं..... तथा उसकी हड्डियों को अपवित्रता तथा अशुद्धता के कुत्ते छिछोड़ रहे हैं!

मैं नहीं रो रही थी, बल्कि सतीत्व तथा मान एवं मर्यादा स्वयं अपनी लाश पर आँसू बहा रही थी।

(३)

यदि हर सती और साध्वी नवला साक्षात् इस्लाम है तो उसके साथ अत्याचार करने वाला साकार यज़ीद है। वह यज़ीद जिसने कर्बला के ख़ूनी मैदान पर इस्लाम रूपी कौमार्य्य के साथ जब्र किया। जिसने इस्लाम रूपी अबला को अपने लोहित पंजे में दबोच लिया और चाहा कि उसका सतीत्व नष्ट करे। .....वह सफल होते-होते रह गया.....जबह अज़ीम (महान् बली अर्थात् हज़रत हुसैन) की भविष्यवाणी पूरी हुई।

यज़ीद जैसे कामी और ख़ूनी तथा इस्लाम के दरमियान ख़ूने-हुसैन दर आया और इस बलिदान के कारण इस्लाम के कौमार्य्य की रक्षा हुई। अब देखिए कि उसके ललाट पर वही कौमार्य्य की ज्योति प्रकाशमान है। उसके गुलाबी अधरों पर वही कोमलता तथा सतीत्व की आभा है किन्तु आह! उसके नेत्रों में निःसन्देह ख़ून है और यह समस्त इस्लामी संसार के लिए अनवरत तथा अविच्छिन्न वेदना है।

किन्तु मैं?.....यह एक प्रश्न था.....मेरी आहें व्यर्थ गईं? मेरी फ़रियाद की कोई सुनवाई नहीं? यह असम्भव है! किन्तु घटना तो घटी थी।

जिस प्रकार कर्बला की घटना यज़ीद की असफलता के उपरांत भी इस्लामी-संसार के लिए एक निरन्तर दुःख है उसी प्रकार बल्कि उससे भी ज़्यादा, एक ग़रीब, एक दीन तथा निर्दोष कन्या का बेआबरू होना, उसके कुटुम्बियों तथा सम्बन्धियों के लिए एक निरन्तर तथा परस्पर पीड़ा है! वह पीड़ा जिसकी कसक आवर्तनीय है! वह टीसें जिनकी लपकन सात पीढ़ियों तक नहीं जाती, किसी करवट क़ब्र में भी शांति नहीं मिलती! लोग क़ब्र को भी देख कर यही कहते हैं, इस लड़की के साथ यह अत्याचार किया गया था!

एक कोढ़ और कलंक का टीका कुल के ललाट पर अमिट होकर रह जाता है, और यह वह अवसर है कि न्यायाधीश चीख उठता है कि सामाजिक नियम केवल कठोर ही नहीं, बल्कि अत्यन्त निर्दई तथा क्रूर हैं।

यह सब कुछ तो एक ओर, किन्तु उधर! अत्याचारी के चेहरे पर प्रसन्नता के कारण सफलता और कार्य-कुशलता की झलक! उसका हृदय पाशविक कामनाओं तथा घृणित दुराचार

के नशे में चूर है और वह सारी सृष्टि को कुछ इस तरह आत्म-विभोर और सन्तुष्ट होकर देखता है जिस प्रकार एक मक्खी अपने गंदे शरीर को लेकर हलवाई की दूकान पर बैठ कर यही सोचती है कि यह संसार, और यह हलवाई, सबके सब इसीलिए विवश और इसीलिए नियुक्त किये गये हैं कि मेरे लिए यह दूकान लगायें और यहाँ की जो कुछ भी सामग्री हो वह मेरे लिए ही हो।

मैंने सोचा कि मैं क्या थी और अब क्या हूँ ? क्या मेरा जन्म इसी दिन के लिए हुआ था कि ठीक अपने यौवनकाल में किसी दुराचारी के अत्याचारों का निशाना बनूँ ? क्या मैं इसीलिए उत्पन्न हुई थी कि विकसित होने के पहले ही उस अभागे पुष्प की भाँति तोड़ कर एक प्लेग से मरे हुए व्यक्ति की अर्थी की शोभा बनूँ जो वास्तव में किसी अमर रण-वीर के गले के हार के लिए चुना गया था !

सारांश यह कि मैं तबाही और सर्वनाश की गोद में थी। मेरी परिस्थिति का अनुमान लगाना आसान है। निम्नलिखित सारे विचार पलक मारते ही मेरे मस्तिष्क में फिर गये। मैं कदाचित् इसी की बाट जोह रही थी कि अब आकाश फट पड़ेगा और गगन-मंडल विचलित होकर पृथ्वी की काया पलट देगा, किन्तु खेद है कि कुछ भी न हुआ। और मैं उसी प्रकार उस दुराचारी के बाहुपाश में थी।

(४)

मेरा मस्तिष्क बेकार था। ज्ञानेन्द्रियाँ सुप्त थीं। होश फाख्ता हो चुके थे, अंग-प्रत्यंग बेकार हो चुके थे और सारी शक्ति क्षीण हो चुकी थी और मैं उस नीच प्रकृति के सुंदर युवक को देख रही थी जिसने मेरे लिए संसार को एक दुखमय वस्तु बना दिया था।

अब क्या होगा ? कहाँ जाऊँगी ? किसे मुँह दिखाऊँगी ? यह प्रश्न थे और उनका एकमात्र उत्तर केवल मृत्यु का आस्वादन था। मृत्यु ही मेरी दवा थी।

किस प्रकार मैं फूट-फूट कर अपने सर्वनाश पर रो रही थी, और वह कठोर हृदय किस भाँति अपने गंदे प्रेम के निर्मूल वचनों से सन्त्वना नहीं दे रहा था बल्कि मेरे हार्दिक घावों पर निमक छिड़क रहा था !

मुझमें वेदना थी या मैं स्वयं वेदना में ? सोचिए ज़रा !

(५)

सवेरा होते ही वह ख़ुदा का बन्दा विदा हुआ। यहाँ से चले ही जाने के लिए शीघ्रता से अपना सामान-विशेष बाँधा और एक रुखसती सलाम के बाद चला गया।

उसके चले जाने के बाद ही वह व्यक्ति आया जिसकी मैं मेहमान थी तथा जिसके मित्र की मैं अब आदरणीय गृहिणी थी। उसने मुझसे गोपनीय स्वर में मेरा पता इत्यादि पूछा, संतोष दिलाया कि रहस्य का उद्घाटन न होगा, मैंने यह शब्द सुने। आह ! मुझे दिलासा दिलाया जा रहा था, और मैं फिर भी जिन्दा थी !

मैंने कोई उत्तर न दिया। उसने स्टेशन चलने की शीघ्रता प्रकट की और अपने को बुर्क़ा और चादर में अच्छी तरह लपेट कर मैं रोती-कलपती स्टेशन पहुँची। मैं सारे संसार को चकित होकर देख रही थी कि उसमें प्रत्यक्ष कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ न मेरे सर्वनाश से संसार प्रभावित हुआ था !

स्टेशन पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि भाई साहब का एक तार स्टेशन-मास्टर के नाम आया हुआ रक्खा है। जिसे उन्होंने बड़ी सावधानी के साथ रख छोड़ा था। अब जो मैं आई तो

उन्हें उसका स्मरण हुआ तथा तार पढ़ने से मालूम हुआ कि वह मुझे लेने अब आते ही होंगे। मैं मुसाफ़िरखाने में बैठी अपने भाग्य को रोती रही।

छठाँ परिच्छेद

भूतकालीन कथा

(१)

भाई साहब मुझे लेने के लिए आठ बजे वाली गाड़ी से आ रहे थे और इस वक़्त साढ़े सात बजे हुए थे। मैं मुसाफ़िरखाने में बैठी कुछ सोच रही थी। एक अंधकारपूर्ण भविष्य मेरे समक्ष मृत्यु की-सी कालिमा प्रस्तुत कर रहा था। फिर स्थिति तो अब यह थी कि भाई साहब आते होंगे, वह क्या कहेंगे (मानो मैं उनसे सब कुछ कह ही तो दूँगी!)

वही व्यक्ति, अर्थात् स्टेशन का बाबू आया, जिसके यहाँ मैं ठहरी थी और उसने फिर उसी रहस्यवादिता के साथ कहा कि 'परमात्मा के लिए किसी से कहना मत।'

यह कह कर वह चला और फिर लौट कर आया और झुक कर कहा—"यह कह देना कि रात्रि को आराम से मेरे घर की स्त्रियों के साथ रही थी।"

वह तो चला गया और अब मैं सोच रही था कि भाई साहब से भला क्या कहूँगी। असम्भव है कि वास्तविक घटना अपने मुख से कह सकूँ, और यह भी असम्भव है कि उन्हें धोका देकर कुछ न कुछ बता दूँ, अतः यह निश्चय किया कि कुछ न बोलूँगी, चुप होकर रह जाऊँगी। यह सोचते ही मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। मैं ख़ूब जी भर कर रोई।

(२)

भाई साहब आये, किस प्रकार प्रेम और स्नेह से उन्होंने हाल-चाल पूछा। मैं भला क्या कहती। सोचा था कि चुप रह जाऊँगी। किन्तु मेरी दुष्टता तो देखिए कि मैंने उनसे वही कह दिया जो मुझे सिखाया गया था। अर्थात् यह कि मालगोदाम के बाबू के यहाँ की स्त्रियों ने मुझे बड़े आराम से रक्खा!

उन्होंने मेरी असाधारण परिस्थिति देखी। क्योंकि वास्तव में मैंने बहुत मार खाई थी। मैं भला क्या उत्तर देती। बड़े ही सूखे मुँह से कह दिया कि परेशानी और हैरानी तथा यात्रा की असाधारण थकान के कारण यह हाल है। इसके बाद वह मेरे सोते रह जाने की मूर्खता पर लांछित करते रहे। जो कुछ मुझसे बन पड़ा अपनी सफ़ाई में मैंने कहा। संक्षिप्त-सा क़िस्सा सुनाया। तद्उपरांत मालबाबू के घर की स्त्रियो के स्नेह तथा सद्व्यवहार पर प्रकाश डाला कि किस प्रकार उन्होंने सब मर्दों को घर से निकाल दिया और मुझे सुखपूर्वक रक्खा। भाई साहब भी आखिर आदमी हैं, कहने लगे कि मैं बाबू के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने जाता हूँ। बड़ा सज्जन है बेचारा। मैं कैसे रोकती और वह उस नालायक़ बाबू को धन्यवाद देने गये कि मैं उस लड़की का भाई हूँ जिसे तुमने रात भर आराम से रक्खा था! या इलाही! क्या यह सब चालाकियाँ और मक्कारियाँ उसी एक कुकर्म के कारण नहीं की जा रही हैं? यह मैंने अपने मन में विचारा।

भाई साहब तो गाड़ी की प्रतीक्षा में टहलने लगे और मैंने झाँक कर देखा कि वह मालबाबू से किस प्रकार बेझिझक मिल रहे थे। देखते ही मेरे ऊपर जैसे बिजली गिरी। बेहाल हो गई। हृदय मसोस कर रह गई। इस विचार पर कि माल बाबू उनकी

ओर देखता होगा और दिल में कहता होगा, कि यह उस लड़की के सगे भाई हैं और किस शान से अकड़-अकड़ कर, बल खा-खाकर सिगरेट का धुआँ छोड़ कर अपनी शान जमा रहे हैं। हालाँकि असलियत मुझे मालूम है।

मुझसे अन्त में यह दृश्य देखा न गया और मैंने मुँह फेर लिया, अब मैं एक और बात सोचने लगी, वह यह कि मेरा क़ातिल कौन था? मुझे उसका नाम और पता पूछ लेना चाहिए था! समय पर काम देता। न मालूम अब मेरे ऊपर क्या मुसीबत पड़े और न मालूम क्या पेश आये। ख़ुदा जाने किस बुरे दिन का सामना हो। कितना अच्छा होता जो मैं उससे उसका नाम पूछ लेती। उसने मुझसे पत्र लिखने को कहा था। अपना पता लिख कर दिया था। और जब मैंने लेने से इन्कार कर दिया तो उसने स्वयं अपने हाथ से मेरी वास्कट की जेब में ठूँस दिया। जो मैंने उसके पीठ मोड़ते ही मल कर वहीं ग़ुस्से में रौंद कर फेंक दिया था और जूती से मसल डाला था। मुझे उठा कर रख लेना चाहिए था। मुझे वास्तव में अब उसकी प्रेम से परिपूर्ण बातें याद आ रही थीं। इसलिये कि मेरा वश न था जो अब उसकी होकर रह जाऊँ। किसी प्रकार मेरा विवाह-बंधन टूट जाय, मुझे तलाक़ मिल जाता और मैं उसी निर्दयी के सर जा पड़ती कि अभागे अब तूने मुझे कहीं का न रक्खा और न मैं अब और किसी की हो ही सकती हूँ; अतः अब तू ही समेट मुझे। मुझे ही अब रख अपने पास। मैंने विचारा तो अब मैं उसके अतिरिक्त किसी और के योग्य ही न थी। इस दुनिया के लिए बेकार थी। मुझे घर जाना भी भारी हो रहा था। बस यही इच्छा होती थी कि या तो मृत्यु आ जाय या किसी न किसी तरह मेरा लगन-बन्धन तोड़ कर मुझे उसके सर मढ़ दिया जाय,

किन्तु यह कैसे सम्भव था। मेरे पास तो उसका पता तक न था। उसके नाम तक का मुझे ज्ञान नहीं था। कैसी भूल की मैंने।

(३)

मैं इसी सोच में सर्वथा डूबी हुई थी कि गाड़ी चीखती-चिंघाड़ती, बल खाती, दनदनाती और धुआँ नहीं बल्कि मेरे सर्वनाश पर एक भयंकर तथा घृणित परिहास तथा अट्टहास करती हुई प्लेटफ़ार्म में घुस आई।

भाई साहब ने मुझे ले जाकर जनाने दर्जे में बैठाया। अब मैंने एक कोने में मुँह लपेट कर अपने भाग्य पर मन ही मन रोना शुरू किया।

दो-चार स्त्रियाँ भी यात्री थीं, मुझे उनसे आँख मिलाना दूभर हो रहा था। केवल इसी ख़्याल से कि यह बेचारी मुझे अपनी-जैसी ही समझती होंगी, और यह विचार भी न कर सकती होंगी कि मुझ पर अत्याचार भी हुआ है।

यात्रा मेरी कोई बहुत लम्बी न थी। पलक मारते कट गई। मैं आँख बन्द किये एक कोने में चुपचाप मुँह छिपाये बैठी रही।

(४)

मामा जी के घर जो पहुँची तो मुझे "सकुशल!" देख कर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। फिर वैसे भी घर क्या, बस यह कहिये कि आमोद-प्रमोद का अखाड़ा बना हुआ था। मुझे देख कर प्रसन्न होने वालियों से मेरा बस न था जो मैं उनसे बतला देती कि यह हँसने का नहीं रोने का अवसर है।

रास्ते में सोचती थी कि अपनी विपत्ति का हाल कम से कम अपनी ममेरी बहिन से तो अवश्य कह दूँगी, जिसकी लगन में आई थी परन्तु अब ज्ञात हुआ कि यह भी असंभव है।

किन्तु शीघ्र ही सबने महसूस किया कि मैं चिन्तित, तथा आवश्यकता से अधिक दुखी और उदास हूँ। अर्थात् इतनी चिन्तित और उदास, कि उन्हें मुझसे अन्त में पूछना ही पड़ा। मैंने यात्रा की थकान और परेशानी का बहाना किया और वे शान्त हो रहीं, किन्तु मेरा दुःख, या मेरी उदासी ऐसी न थी जो केवल यात्रा और अव्यवस्था के कारण होती। परिणाम यह हुआ कि पूछने वालियों ने कदाचित् विश्वास नहीं किया और पुनः पूछा और मैंने पुनः वही उत्तर दिया तो फिर ज़ोर देकर पूछा। मानो विश्वास करने से इन्कार कर दिया। किन्तु मैंने भी ज़ोर देकर उनको विश्वास दिलाया कि दूसरी कोई वजह नहीं है। मजबूरन मुझे ध्यान से देख कर चुप हो गईं। किन्तु मेरी उदासी इतनी असाधारण थी कि ममेरी बहन ने दो-तीन बार पूछने के बाद सचमुच ज़िरह शुरू कर दी। लाख-लाख उसे समझाती हूँ कि बहन कुछ नहीं, परन्तु उसे विश्वास ही नहीं आता। वह यही कहती कि "यात्रा की थकान न हुई, एक बला हो गई कि हँसना-बोलना तो ख़ैर बन्द हो गया किन्तु यह क्या कि तुम तो एकदम से स्तब्ध होकर रह गई हो! आख़िर मामला क्या है!"

मैंने जिस तरह बन पड़ा उसे शान्त किया और वह चुप हो गई। पुनः अवसर पाकर उलझ पड़ी और इस बार उसने स्पष्ट रूप में कह दिया—"हो न हो बहन दाल में कुछ काला अवश्य है। क्या किसी को दिल तो नहीं दे बैठी हो।"

मैंने सचमुच जल कर कहा कि "अभागा, ज़बान को तेरी लगे आग। दुलहिन बनी बैठी है और हाथ भर का ज़बान चला रही है।"

सारांश मैंने खूब झाड़ा किन्तु सब व्यर्थ। क्योंकि वही क्या मेरी विचित्र हालत देख कर सब के सब मेरे सर हो गये, अब

तो मुझे विवाह में सम्मिलित होना भी दूभर हो गया, किन्तु मैं इन्कार पर इन्कार ही किये गई।

परन्तु फिर भी यह वाक्य सुनने ही पड़े। "एकदम से यह बुझ कर रह गई!.....न हँसती है, न बोलती है! आज मौन क्यों है! यह इसे क्या हो गया!" इत्यादि, इत्यादि।

नौबत यहाँ तक पहुँची कि मैंने बिगड़ना आरम्भ किया और दो-एक को भली-भाँति लथाड़ दिया। किन्तु भला इन बातों से क्या होता है। मैं अपने ग़म में डूबी रही और विवाह की धमा-चौकड़ी मुझे एक कल्पित घटना-सी प्रतीत हुई। स्पष्ट है कि मैं किस प्रकार उसमें सम्मिलित हुई हूँगी।

जब वहाँ से वापसी हुई तो मेरे प्राण मानो विपद से मुक्त हुए। मैं सन्तोष तथा धैर्य और एकान्त के खोज में थी। किन्तु विवाह की गड़बड़ी मेरा दिमाग़ खाये जा रही थी।

मुझे पूर्ण आशा थी कि घर पर मुझे हार्दिक संतोष प्राप्त होगा और मैं भविष्य के लिए कुछ सोच सकूँगी।

(५)

घर को संतोष-जनक स्थान के बजाय दुखद स्थान पाया। दो-चार स्त्रियों ने मेरी ओर देख-देख कर गुप्त परामर्श किये। और उसके बाद मुझसे उल्टी-सीधी जिरह की। परिणाम यह हुआ कि मुझे मन ही मन में क़ायल होना पड़ा कि निःसन्देह मुझ में इतना अधिक तथा स्पष्ट परिवर्तन उस घटना के बाद से उत्पन्न हो गया है कि जो मुझे देखता है वह प्रश्न करने तथा स्वयं मेरी ओर से चिन्तित होने के लिए बाध्य है।

तदनुसार मैंने अपना हृदय कड़ा करके अपना मौन भंग किया। कोना खोजने की अपेक्षा एक झूठमूठ निश्चिन्त तथा प्रसन्नता के साथ बातूनी बनने की चेष्टा की। चेष्टा की कि यथा-

शक्ति सचमुच जो कुछ बीता है भूल जाऊँ अथवा भुला दूँ, अतः शीघ्र यही परिस्थिति धारण की।

इसमें मुझे काफ़ी सफलता प्राप्त हुई। मैंने भी यही कहा जो कुछ भी होना था सो हो लिया, अब उसका सोच क्या, देखा जायगा, वस्तुतः सोच कर केवल ध्यान बटाने के अभिप्राय से अपनी सहेली आरफ़ा के यहाँ चली गई। वहाँ से लौट कर दो-चार रोज़ के लिये स्वयं उसे बुला लिया। फिर उसके दो-चार रोज़ के बाद मुझे बुख़ार आ गया। कोई दस रोज़ तक बीमार रही, सर के दर्द के मारे मरी जाती थी और आपसे आप सब कुछ भूल गई।

बीमारी से जो उठी तो बीती हुई घटना बहुत कुछ मिट चुकी थी या मिट रही थी। और अब उस ओर से कुछ शांति थी। गोया भूल चुकी थी और भूल रही थी।

बहुत शीघ्र बात आई-गई-सी मालूम होने लगी, और सचमुच भूल गई.....हाय!

द्वितीय भाग

सातवाँ परिच्छेद

विपत्ति का प्रारम्भ

(१)

मैंने बड़ी तत्परता से मामले को 'गया-बीता' करने की अत्यन्त चेष्टा की थी। जिसका परिणाम यह हुआ कि सचमुच सब कुछ भूल गई थी। जैसे कि कुछ हुआ ही न था!

मेरा अपराध गोपनीय था। मैं अपराध ही कहूँगी। क्योंकि मैं उसको गुप्त रखने की अत्यन्त चेष्टा कर रही थी और किसी प्रकार उसको प्रकट करना न चाहती थी, सारांश यह कि मेरी काली करनी पर ख़ामोशी की काली चादर पड़ी थी। दुःख कभी का हलका हो चुका था। अंतरात्मा की वेदना शांत हो चुकी थी बल्कि नष्ट हो चुकी थी। वही अंतरात्मा जो कभी कहती थी कि किस प्रकार तू अपने प्रिय तथा प्रेम करने वाले वफ़ादार पति से आँख मिलायेगी? किस मुँह से बिदाई के उपरान्त उसके सामने जायगी? वही अंतरात्मा अब अनुभव-प्राप्त नुस्खे बता रही थी। निःस्तब्धता तथा मक्कारी ऐसी वस्तुएँ हैं कि बेचारे पति के बाप को पता न चले कि यह मोती सच्चे

हैं अथवा झूठे। वह विचार कि अपने प्रिय पति के चरणों पर गिर कर सारी दुःखद गाथा रो-रोकर वर्णन कर दूँगी, किसी से न कहूँगी किन्तु हाँ, संसार की सर्वप्रिय वस्तु यानी पति से सब कुछ अवश्य कहूँगी, तथा अपनी निर्दोषिता और अपने ऊपर किये गए अत्याचार की कहानी उसे सुनाऊँगी। आश्चर्य नहीं जो वह दया करें और क्षमा प्रदान कर दें। वस्तुतः यह ख्याल कभी का दिल से निकल चुका था। अब तो यह सोचती कि इसी प्रकार पति से भी इस रहस्य को गोपनीय रक्खूँगी जिस प्रकार औरों से गुप्त रक्खा है। मेरा इसमें कोई दोष नहीं मजबूरी थी! मैं निरपराध हूँ तथा मेरा हृदय निर्दोष है। मैं निःसन्देह अपने पति से बिना आँख झपकाये मिल सकती हूँ क्योंकि सचमुच मैंने तनिक भी पाप नहीं किया और कोई विशेष आवश्यकता नहीं जो यह 'दुखड़े' पति के सामने बैठ कर अकारण रोये जायँ। अतः अब यह समस्या हल हो चुकी थी। विपत्ति को सहन करके भुला चुकी थी कि एक दूसरी ही घटना घटी।

(२)

मैं बिलकुल निश्चिन्त थी और सब कुछ हृदय से लुप्त हो चुका था लेकिन शंका एवं संदेह के मनहूस बादल इस प्रकार उमड़ कर आये कि मैं सिहर उठी।

कुछ सन्देह-सा हुआ था कि कहीं कोई और बात तो नहीं थी। जवान लड़की अपनी स्वाभाविक गति में यदि कुछ अन्तर देखे तो कोई विशेष बात नहीं किन्तु ऐसी परिस्थिति में जब कि वह मेरी भाँति घटनाओं का सामना कर चुकी हो तो अनेकों प्रकार के सन्देह आना अनिवार्य है, रह-रहकर भय-सा लगता था कि कहीं कुछ और बात तो नहीं है। अतः बैठ कर भली-भाँति

हिसाब लगाया, सोचा, विचार किया, दिन गिने तो और भी सन्देह होने लगा। परेशान-सी हो गई। दिल को तरह-तरह का हिसाब लगा कर समझाया किन्तु सन्देह न गया। बहुत अस्त-व्यस्त हुई। दिल में सोचा कि लाओ आरफ़ा तो अपनी विश्वासपात्र है, उससे क्यों न सब हाल कह दूँ ? तदनुसार यह निश्चय करके उसके घर गई। कहना चाहा और बार-बार इरादा किया, बल्कि कई बार तो केवल ज़बान पर आकर बात रुक गई। सारांश किसी प्रकार कहते न बना। बहुत कुछ अस्त-व्यस्त हुई तथा बहुत विचार किया किन्तु कुछ परिणाम न निकला। फिर आपही आप चार-छः दिन बाद ख्याल जाता रहा। परेशानी स्वयं दूर हो गई। पूछ-गाछ से अपना संतोष कर लिया। हृदय को समझा लिया कि प्रायः ऐसा भी होता है, कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं। परिणाम यह कि शीघ्र ही बात आई-गई हो गई। दो-चार रोज़ और बीते और ख्याल भी न रहा। दिन बीते और सप्ताह बीते। स्वयं अपनी शंका पर हँसी आई और पूर्ण विश्वास हो गया कि केवल भ्रम-मात्र था।

(२)

जो कुछ हो चुका है वह बिल्कुल निर्मूल तो नहीं हो सकता। अन्त में वह समय आया कि फिर संदेह उत्पन्न हो। मैं घबड़ा गई। इलाही अब मैं क्या करूँ ! जो दिन बीतता पहाड़ मालूम होता, सारांश संदेह अपनी सीमा से विचर कर विश्वास के रूप में परिवर्तित हुआ और मेरे दिल ने गवाही नहीं दी बल्कि सचमुच प्रमाणित हो गया कि घटना घटी ही है, क्योंकि चिन्ह स्पष्ट थे ! परमात्मा की यह इच्छा नहीं कि मेरी लाज सुरक्षित रहे ! भेद खुलेगा ! अपमान का सामना होगा, वास्तविक रूप में मर्य्यादा अब भंग होगी, सब कुछ कहना

पड़ेगा। माता-पिता तथा भाई-बहन सबको मालूम होगा कि किस प्रकार मेरा लोक-परलोक नष्ट हुआ है, यह बात सारे खानदान को मालूम हो जायगी। प्रत्येक व्यक्ति आने-जाने वाला इस रहस्य से परिचित होगा। अर्थात् वास्तव में इस रहस्य का भंडाफोड़ होगा। यह था प्रारब्ध का वह लेख जो स्थूल तूलिका-द्वारा एक भयंकर कालिमा की लिखावट बन कर मेरे नेत्रों के सामने कौंध गया।

यह तमाम भयंकर तथा प्राणलेवा विचार! ख़ुदा की पनाह!! मेरी मान तथा मर्य्यादा का शव पड़ा था और यह भयंकर, विचार हिंसक जीवों की भाँति, किस प्रकार एकत्र होकर तथा झूम-झूम कर और नृत्य करते हुए इस पददलित शव पर उतर रहे थे।

मैं आश्चर्य-चकित हो गई। एक धड़का-सा लग गया। या अल्लाह! अब क्या होगा? आख़िर मैंने कौन-सा ऐसा दोष किया है जिसके फलस्वरूप मुझे यह दंड दिया जा रहा है! क्या ईश्वरी न्याय वास्तव में उठ गया। क्या निर्दोष के लिये यही दण्ड है!.....जो मुझे मिल रहा है! इन विचारों के समावेश से मैं पिस कर रह गई! पामाल होकर रह गई। फिर मरे पर सौ दुर्रे, वह मसल हुई। अर्थात् विचारों ने और भी प्राणलेवा ढंग से दुख पहुँचाने के नये मार्ग ढूँढ निकाले।

(४)

विचारों का समावेश भयंकर कल्पना बन कर मुझे सता रहा था। वह सारी बातें एक-एक करके स्मरण हो आईं जिनके घटने की संभावना थी.....वालिद साहब जिस समय सुनेंगे कि मेरी बेटी के साथ यह अत्याचार किया गया तो आश्चर्य नहीं जो ख़ुद को गोली मार लें.....निःसन्देह उन्होंने यह न

किया तो उनके मिलने वाले आकर उनसे सहानुभूति के नाते तथा इशारे-इशारे में पूछेंगे कि वह कौन दुष्ट था और किस प्रकार उसने तुम्हारी पुत्री के साथ दुराचार किया ।..... भाई साहब को मालूम होगा तब वह क्या करेंगे !..... अपमान न सह कर आश्चर्य नहीं कि मुझे भी मार डालें और स्वयं अपने प्राण दे दें !.....मुहल्ले में कानाफूसी होगी ! .....अम्मा जान से मुहल्ले वालियाँ क्या कहेंगी !..... शत्र तथा द्वेषी कैसी-कैसी कल्पनाएँ करेंगे ! इत्यादि-इत्यादि ।

अत: ये सारे विचार मेरे मस्तिष्क में इस प्रकार बार-बार आये कि हार्दिक क्लेश के कारण मैं सचमुच चीख़ पड़ी ! अब मुझे ज्ञात हुआ कि मृत्यु के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं । मृत्यु ही एक ऐसी औषधि है कि वह सारे झगड़े बड़ी सरलता के साथ सर्वदा के लिये शान्त कर देगी ! इसके अतिरिक्त कोई दूसरी तदबीर नहीं । बहुत सोच-विचार के उपरान्त मैंने निश्चय कर लिया कि मुझे क्या करना चाहिए । कुआँ घर ही में मौजूद है अत: अब सुन्दर उपाय यही है कि इसमें गिर कर अपने निन्दनीय जीवन का अन्त करके बाप-दादा की मर्य्यादा की रक्षा करूँ । इस प्रस्ताव पर घंटों विचार किया, हर प्रकार से उपयुक्त पाया । लोग यही कहेंगे कि अकस्मात् गिर गई और सर्वदा के लिए यह क़िस्सा डूब कर रह जायगा । बहुत अच्छा उपाय है अत: यही निश्चय करके हृदय को संतुष्ट किया और वास्तव में एक हार्दिक संतोष प्राप्त हुआ । वस्तुत: विचारों की झोंक में उठ कर गई । शीघ्र कुएँ में झाँक कर देखा । भीतर अंधकार था ध्यानपूर्वक देखने से पानी हिलता हुआ दिखाई पड़ा, किन्तु ध्यान जो एकदम से उसकी गहराई की ओर गया तो हृदय सिहर उठा । झट से एक बाल्टी भर कर चली आई ।

(५)

रात्रि की नीरवता थी! अँधेरी रात मेरे भाग्य से भी अधिक अंधकारपूर्ण प्रतीत हो रही थी। एक भयंकर नीरवता वातावरण में विराज रही थी तथा अँधेरे क्षितिज में मनहूस तारों की चमक!.....बस यह प्रतीत होता था कि आकाश से मेरे ऊपर सलाखों और भालों की मार पड़ रही है।

मैंने अपनी चारपाई पर बैठ कर चारों ओर देखा। एक विचित्र निस्तब्धता छाई हुई मालूम हुई। मैंने अम्मा जान की चारपाई की ओर कान लगाये। सिवाय झींगुरों की निरंतर आवाज़ के चारों ओर पूर्ण नीरवता छाई हुई थी।

मैंने दिल में विचारा कि यही अवसर है, अतः मैं उठी, दबे पाँव कुएँ की ओर बढ़ी। कुएँ की जगत पर भारी क़दमों से चढ़ी। अकस्मात् आकाश की नीरवता तथा अंधकारपूर्ण क्षितिज की ओर दृष्टि गई और मैंने देखा कि एक तारा, एक तड़प के साथ अपने स्थान से टूट कर ग़ोता मार कर सीधा मेरे सामने क्षितिज के अंधकार में सर्वदा के लिए विलीन हो गया। मुझे सम्भवतः ध्यान आया कि मैं भी अब जीवन के प्रकाश और यौवन की चमक-दमक के साथ इस तारे की भाँति सर्वदा के लिए इस कुएँ की अंधकारपूर्ण गहराई में डूबती हूँ। यह सोच कर मैंने दिल कड़ा करके कुएँ के भीतर झाँका।

बस मेरा कुएँ में झाँकना ही एक क़यामत हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो भीतर का ख़ूनी तथा भयावह अंधकार सचमुच मुझे खींचे लेता है! कुआँ नहीं बल्कि एक भयंकर अजगर है जो मेरी ओर मुँह फाड़ रहा है। ऐसा भय लगा कि बस एक चीख मुँह से नहीं निकली, यही ग़नीमत हुई। कहाँ का डूबना और कैसा तैरना! बुरी तरह जी छोड़ कर भागी!

बस यही मालूम हुआ कि कुआँ एक राक्षस है और अपना स्थान छोड़ कर अब लपका मेरी ओर! फिर तो इस प्रकार मैं प्राण छोड़ कर भागी हूँ कि कह नहीं सकती। बरामदे के खंभे से खड़ी मैं हाँफ रही थी और हृदय बाँसों उछल रहा था और मैं उसी अंधकार में खड़ी उस कुएँ की जगत को ध्यान से देख रही थी कि कहीं हिल तो नहीं रही है, कहीं वास्तव में कुआँ मेरी ओर मुझे निगलने के लिए आ तो नहीं रहा है।

(६)

जब ज़रा चित्त ठिकाने हुआ तो मैं हार कर अपनी चारपाई पर आ गई। कुएँ में गिर कर मरना तो बड़ी बात है कुएँ की ओर निहारना दूभर हो रहा था। किन्तु मरना मेरे लिए अनिवार्य था अतः अब चुपके से रस्सी खोली, फंदा बना कर गले में डाल कर धीरे-धीरे जो दबा कर देखा तो मालूम हुआ कि बस यह ठीक है, फाँसी देकर मर जाना बहुत ठीक रहेगा, किन्तु ज़ोर से जो कसा है तो ख़ुदा की पनाह! किस प्रकार फड़फड़ा कर मैंने शीघ्रता से फंदा ढीला किया है कि मेरी गर्दन छिल गई। ज्ञात हुआ कि मरना वास्तव में सबसे कठिन कार्य है, अतः प्रस्ताव में अब परिवर्तन हुआ। दिल में आया कि कहीं से संखिया मँगाऊँगी तब जाकर काम चलेगा। इसी सोच में देर तक लीन रही और फिर सो गई।

थोड़ी ही देर पश्चात् स्वप्न देखा। कैसा भयानक स्वप्न था। मैंने स्वप्न में कुएँ को देखा, एक काली बला थी कि जँभाई ले रही थी और मैं स्वाँस के साथ उसके मुँह की ओर खिंची जा रही थी। मैंने इस विचार से कि कहीं मैं स्वाँस के साथ खिंच न जाऊँ, सोने ही में चारपाई को ज़ोर से पकड़ लिया। एकदम से मुझे मालूम हुआ कि कुआँ मेरी ओर मुँह फाड़कर निगलने को

लपका ! बस एकदम से सोते ही में मेरे मुँह से ज़ोर से चीख निकल गई और मेरी आँख खुली तो ज़ोर से चारपाई की पट्टी पकड़े हुए थी, मारे भय के मेरी घिग्घी बँध गई। अम्मा जान जाग उठीं उन्होंने पूछा तो मैंने कह दिया कि स्वप्न में डर गई थी।

दूसरे दिन सबेरे जो उठी तो उलझनों के लिए रास्ता सुलझा हुआ मिला। फिर वही विचारों का समावेश ! फिर वही निरंतर विचार-धारा, और नवीन से नवीनतम मार्ग ! विचार था कि उड़ा जा रहा था ! कहाँ-कहाँ पहुँच रहा था।

फिर उसी कल्पना से प्रारंभ हुआ कि मैंने बड़ी भारी भूल की जो उस अत्याचारी का नाम और पता फेंक दिया। जब इस रहस्य का उद्‌घाटन होगा तथा ससुराल तक बात जायगी तो क्या परिणाम होगा ? तलाक़म तलाक़ होगा, वह कहावत हुई कि धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का ! मुझे क्या खबर थी, नहीं तो मैं उसका पता सावधनी से रख लेती और जब मुझ पर संकट आता तो उसको पकड़ती।

वस्तुतः क्या बताऊ। कैसी-कैसी मैं परेशान हुई। बस न था जो अभी-अभी उस अत्याचारी के पास पर लगाकर पहुँच जाती और कहती कि हे निर्दयी ! तूने मेरा सर्वनाश किया, अब बता कोई उपाय। यह ध्यान में भी न आता था कि वह इन्कार कर सकता था और मेरी सहायता कभी न करता। वह चोर था, अपराधी था, भला मजाल है जो वह इन्कार करे।

किन्तु अब इन व्यर्थ के विचारों से क्या होता था, मैं तो उस बाबू का नाम भी नहीं जानती थी। यह विचारधारा तथा उनका भयंकर सिलसिला, एक अत्यन्त दुखद तथा प्राणलेवा किन्तु जाग्रत स्वप्न होकर एक चलायमान् तथा कंपित परन्तु

काल्पनिक बला होकर मुझे चिमट गया कि ज्यों-ज्यों मैं उससे घबराती वह और जान को आता और हृदय उलटने लगता। अतः इस सिलसिले को मैंने तोड़ने की चेष्टा की और सोचा कि परिस्थिति को देखते हुए अब मुझे क्या करना चाहिए ?

आठवाँ परिच्छेद

सतीत्व का मूल

(१)

अब यह तो निश्चय था कि भेद प्रकट होगा। निःस्तब्धता की चादर का तार-तार होना आवश्यक था। अब न सही बाद दो महीने के सारी चुप्पी और चालाकी तथा रहस्य के बादल छँट जायँगे, तथा घटनाओं के प्रकाश में मेरे कलंक और कलुषता की धज्जियाँ उड़ाई जायँगी! अतः अब प्रश्न था कि इस रहस्य तथा कूटनीति को छोड़ूँ ? क्यों न, मैं आरफ़ा से शीघ्र से शीघ्र कह दूँ ? बहुत सोच-विचार के बाद मैंने निश्चय कर लिया कि आरफ़ा से कह देना चाहिये।

खूब अच्छी तरह और बार-बार विचार करके यही तय कर लिया और यह निश्चय करने के बाद दूसरे ही दिन आरफ़ा के यहाँ पहुँची।

मुझे देखते ही आरफ़ा समझ गई कि निःसन्देह दाल में कुछ काला है। कहने लगी कि "बहन कुछ निढाल-सी हो रही हो। क्या मामला है, खैर तो है ?"

मैं बैठ गई और जवाब देने के बजाय मैंने उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखा। वह एक अविवाहित नवयौवना थी। कौमार्य्य उसकी आँखों में तरंगित हो रहा था ? पावन-शुचिता

उसके ललाट को चूम रही थी, उसके मुखमण्डल पर वह दीप्ति झलक रही थी, जो एक नारी का सहज स्वाभाविक रूप है ? किन्तु मैं·····उफ़ ·····एक कुचली हुई जवानी, पैरों तले रौंदी हुई तरुणाई। एक धूलधूसरित कुसुम-कलिका, जूते से मसली हुई ! और वह भी ऐसी कि उसकी अपवित्रता फूल का हर पंखड़ी में विष की भाँति बस गई थी। स्वय मेरी प्रकृति मेरे ही लिये घृणित बन गई थी। मेरा अपना चित्त स्वयं अपने ही लिये दुर्गन्धित था, मेरा यौवन स्वयं अपने ही दुर्गन्ध से लज्जित था। मैं पाप की प्रतिमूर्ति और कुकर्मों की प्रतीक थी।····· शैतान का अस्तित्व वरन् शैतान की पैशाचिकता और उसकी पाशविक क्रूरता की सर्वाङ्गपूर्ण एवं अनवरत घोषणा ! लेकिन खुदाया यह सब कुछ होते हुये भी मैं सर्वथा निर्दोष थी।

वह यौवन दीप्ति जो एक अबला के पवित्र ललाट पर ऊषा-काल की तारिका बन कर प्रकाशमान् होती है····· वह शुभ्र उज्ज्वल अनन्त प्रकाश, जिसकी मुहर प्रत्येक अबला के ललाट पर भाग्यविधाता की ओर से लगा दी जाती है, आरफ़ा के ललाट पर जोतिर्मान हो रहा था जिसकी तड़प से मेरी आँखें बन्द हुई जाती थीं ! तथा इस ओर मेरे अभागे और निकृष्ट ललाट पर कलंक की आभा थी।

सारांश मैं कलुषता की सजीव मूर्ति थी और आरफ़ा मेरे लिए एक महान् प्रकाश !

(२)

उत्तर देने के बजाय मैं आरफ़ा को ध्यान से देख रही थी और उसे देखते-देखते मेरा दिल भर आया। आँखें डबडबा आईं। मैंने हतबुद्धि होकर उसके गले में बाहें डाल दीं, और उसको ज़ोर से चिमटा कर अपने दिल का बुखार निकालना शुरू किया।

वह इस असाधारण बात से घबरा गई। उसके होश जैसे जाते रहे तथा एक घबराये हुए स्वर में उसके मुँह से निकला—"मेरी बहन.....!" और भर्राए हुए स्वर में उसने घबरा कर जो मुझे बड़ी नम्रता से अलग किया है, तो मैंने देखा कि उसकी पलकों में सहानुभूति के दो मोती झलक रहे थे। कैसी घबराई हुई सूरत बना कर उसने मुझसे पूछा है "ख़ुदाया.....! बहन तुझे क्या हुआ है ?"

उसके प्रश्न के उत्तर में मेरे पास आँसुओं की लड़ियाँ थीं, या कि वर्षा की एक झड़ी! एक आह के साथ मेरे नेत्रों से बरस पड़े। इसी दशा में, जिस प्रकार भी मुझसे बन सका, अपनी कथा आरंभ की। रुक-रुक कर हिचकियाँ और सिसकियाँ ले-लेकर, रो-रोकर और हिल-हिल कर अपने हृदय पर शोक के घूँसे नहीं वरन् 'पहाड़' मार कर। सारांश जिस प्रकार बन पड़ा और जैसे हो सका, और मैंने इस जटिल रहस्य को आरफ़ा के सामने खोल कर रख दिया। आदि से लेकर अन्त तक उसको अपनी दुखद व्यथा सुना डाली। किस प्रकार एक दुराचारी ने मुझे पकड़ा, किस प्रकार मैं उससे जान पर खेल कर लड़ी और किस प्रकार उससे भयंकर युद्ध किया तथा कैसे उसने मुझे परास्त किया और किस प्रकार मैं इस जटिल रहस्य को बिल्ली का गू बनाए रही, तथा किस प्रकार अब परमात्मा की इच्छा है कि भेद का भंडाफोड़ हो! यह मैंने सब कुछ उसे बता दिया।

(३)

मैं अपनी कथा सुनाती जाती थी और उस भयंकर परिवर्तन को देखती जाती थी जो आरफ़ा के चेहरे से स्पष्ट था। उसने किस प्रकार मेरी सम्पूर्ण कथा सन्नाटे में आकर, तथा निःस्तब्ध

होकर सुनो। सारी कथा सुनाने के बाद मैंने उसकी ओर नेत्रों में नेत्र डाल कर देखा। यह देखने के लिये कि मैं देखूँ तो सही उसके सुंदर अर्धोनीमलित नेत्रों में घृणा की कालिमा दृष्टिगोचार होती है अथवा सहानुभूति का प्रकाश.....मैंने देखा और ध्यानपूर्वक देखा, आह, मैंने देखा कि उसके सुन्दर नेत्रों में मेरे प्रति घृणा की कालिमा दौड़ गई। मेरा हृदय विवश हो उठा यह देख कर कि इन नेत्रों में सहानुभूति का प्रकाश बुझ गया! दिल अनायास भर आया, तबियत उमड़ आई और मैं फूट पड़ी। रोकर मैंने कहा—"बहन, मैं घृणा के योग्य हूँ तो दया की पात्र भी हूँ और जब तुम ही निगाहें फेर लोगी तो मैं किस प्रकार जीवित रहूँगी।"

मेरा यह कहना था कि आरफ़ा की आँखें सहानुभूति तथा प्रेम का प्याला बन गईं जिनमें से दो तप्तनीर के बिन्दु छलक ही तो गये। सहानुभूति के प्रवाह से घृणा की कालिमा धुल गई। उसे मुझसे सहानुभूति थी। वह विश्वास के योग्य तथा प्रेम रखने वाली सहचरी थी, तथा वह घृणा की कालिमा जो मैंने देखी थी, कदाचित् स्वाभाविक थी। उसके पवित्र और स्वच्छ तथा विशुद्ध अंतरात्मा के लिए कदाचित् इस पाशविक अत्याचार का वर्णन ही घृणा के योग्य था। विशुद्ध स्वभाव भी वास्तव में कितना भावुक होता है! आरफ़ा का ज्ञान इस प्रकार के समस्त वर्णन के लिए अबोध था। मेरी कथा का भार उठाना कठिन था! यों भी स्त्रीत्व के लिए इस प्रकार की दुर्गन्ध असहनीय होती है। कहाँ एक पवित्र तथा स्वच्छ और सरल-स्वभाव आरफ़ा-सी नवला! इस प्रकार का वर्णन किसी नवयौवना के सामने वास्तव में उसके विशुद्धतापूर्ण तथा अछूते विचारों के अपमान से कम नहीं! एक कुँआरी बाला की कल्पना भी वास्तव में कुँआरपन को भीनी-भीनी सुगन्ध से सुगन्धित तथा परिपूर्ण

रहती है और फिर यह वर्णन तो अत्यन्त गूढ़ विषय है, कदाचित् मेरी साँस भी इसके विशुद्ध कौमार्य्य की कल्पना के प्रति एक महान अपमान था।

(४)

आरफ़ा ने वास्तविक सहानुभूति के साथ विचारमग्न होकर इस विषय पर ध्यान दिया। कदाचित् अत्यधिक घृणित विषय था जो एक कुँआरी हमजोली के सामने पेश हो सकता था।

इसमें तो शंका तथा संकोच की संभावना ही न थी कि भेद के भंडाफोड़ होने के पूरे सामान हो चुके है तथा अधिक से अधिक एक-दो मास और यह भेद छिपा रह सकता है। अतः प्रश्न यह था कि अब करना क्या चाहिए, किन्तु सच पूछिए तो आरफ़ा बेचारी इस विषय में क्या कर सकती थी। सिवाय इसके कि गुम-सुम हो जाय! एक सन्नाटे में आ जाय। यह वास्तव में ऐसा विषय था कि इसके सदमे और धचके को दुखिया के आस-पास बैठने वालीं तथा सुनने वालीं, ऐसा प्रतीत होता है कि सचमुच वास्तविक रूप में उसे स्वयं अनुभव करती हैं। इसलिए अधिक से अधिक जो वह कर सकती थी, उसने किया। अर्थात् इस शोक की महानता तथा धड़के के सदमे को बेतरह महसूस किया। बड़ी देर तक निःशब्द बैठी रही। उधर वह अत्यंत निर्दोषितापूर्ण दृष्टि से मुझे देख रही थी और इधर दुःख और दर्द के धुँधले मिश्रण के विचित्र प्रभाव से एक न समझ में आनेवाली कल्पित नीरवता वातावरण पर आच्छादित प्रतीत होती थी।

(५)

मैं आरफ़ा के शान्त मुख को देख कर शायद अपनी और उसकी बेबसी और लाचारी पर ग़ौर कर रही थी।

ध्यान देने की बात है। सामाजिक नियमों की जबरदस्ती तो देखिए कि यदि कोई अबला किसी दुराचारी के अत्याचारों का शिकार ह तो है तो वह स्वयं इस मामले को छिपा रखने के लिए विवश है। प्रश्न यह है कि क्यों नहीं वह इस भेद का स्वयं भडाफोड़ कर देती ? क्यों नहीं वह स्वयं इस जुल्म को टहनो को तोड़ कर फेंक देती ! जनता के सामने ! कि देखो यह अभागा अत्याचारी है और इसको दण्ड दो। किन्तु वह ऐसा नहीं कर सकता, मजबूर है क्योंकि यदि वह कहीं ऐसा करे तो अपराधी को तो सुसाइटी एक 'वाह-वाह' तथा 'हुर्रा' के साथ छोड़ देगी और स्वयं उस दुखिया को कोठर से कठोर दण्ड देना चाहेगी ! और फिर जूठे बर्तन की भाँति लोग उसे फेंक देने तथा फोड़ देने की वस्तु समझने लगेंगे। समाज उसके ललाट को बदनामी के गरम लोहे से दाग देगा। फलतः यह कि उससे कह दिया जायगा कि तू इस योग्य नहीं कि उच्च श्रेणी को स्त्रियों की समानता का दावा करे जिन्हें कोई जबर्दस्त हाथों वाला जालिम केवल भाग्यवश या संयोगवश अभी तक नहीं मिला और न भविष्य में मिलने की स्पष्ट रूप से कोई संभावना है ! वह इस योग्य नहीं कि कोई नवयुवक उससे विवाह का प्रस्ताव भी कर सके, यही नहीं उसकी ओर देखना भी पाप है। वह घृणा की पात्र है तथा गले और सड़े शारीरिक अंग की भाँति समाज तथा कुल से अलहदा करके निकाल फेंकने योग्य है। यह है वह दण्ड जो हमारा न्याय-प्रिय नियम एक सच्ची और सीधी तथा सती-साध्वी स्त्री को देता है !

(६)

ऐसी स्थिति में सिवाय इसके क्या चारा कि प्रताड़िता अपना प्रार्थना-पत्र ईश्वरी न्याय-दिवस के लिए उठा रक्खे। जब अत्याचारी पकड़ा जायगा तथा प्रताड़िता का सतीत्व उस सर्वशक्ति-

मान परमात्मा के समक्ष अपनी तबाही और बर्बादी की फ़रियाद करेगा ! और वह भी ऐसी कि देवलोक के स्तंभ हिल जायँगे, देवताओं के हृदय पिघल जायँगे और सब देखेंगे कि यह वह फ़रियाद है जिसमें 'दमे ईसा' (प्रभु यीसू की फूँक) ने प्राण डाले ! 'लहन दाऊदी' (हज़रत दाऊद की तान) ने रिक़्क़त के तार छू दिये हैं तथा उसमें वह वेदना है जो विधाता ने केवल 'हुसैन' (जिनका बध हुआ था) की माता की आह के लिए ही रख छोड़ा था।

(७)

इस नीरवता तथा निस्तब्धता को अन्त में मैंने ही भंग किया। मैंने आरफ़ा से गोपनीय ढंग से पूछा—"कोई औषधि खालूँ ?" "औषधि !" उसके मुँह से अकस्मात् निकला और 'हर्फ़े शिकायत' (उलाहना) बन कर क्षितिज में तैरता चला गया। उसका स्वर वेदनामय संगीत से परिपूर्ण था, उसने अपने अर्धोन्मीलित नेत्रों से मुझे देखा। उसके नेत्र कह रहे थे कि इस प्रकार की बात उसके चित्त पर भार-स्वरूप है। फिर वैसे भी उसकी समझ में न आता था कि क्या सम्मति दे।

बार-बार मैंने उससे परामर्श किया, बार-बार मैंने औषधि के बारे में जब उससे पूछा तो उसने एक विचित्र अर्थपूर्ण सरलता से धीरे से मुझसे कहा—" तुम्हारे पास है ?" और यह कह कर उसकी दृष्टि अनायास नीचे झुक गई।

अब मुझे ध्यान आया, भला कौन मुझे ऐसी औषधि लाकर देगा ? फिर औषधि आ भी गई तो उसका खाना और भेद छिपाये रहना ! इस पराजय के बाद अब स्पष्ट कोई इलाज न था। आरफ़ा ने डरते-डरते यह सलाह दी कि चूँकि मेरा भाग्य निःसन्देह खोटा है तथा बात गुप्त नहीं रह सकती और

फिर मेरा इसमें कोई दोष भी नहीं अतः घरवालों से छिपाये रखना व्यर्थ है।

इस निश्चयपूर्ण सलाह को सुनकर मुझे एक फुरेहरी-सी आई तथा मैंने उससे तिनक कर कहा—"अभागी भला मैं किस प्रकार से और किसी से कहूँ। यदि दासी से कहती हूँ तो वह घर वालों से कहने के पूर्व जाकर पड़ास में फूँक देगी। और उससे पहले घर वालों को पड़ोसा आकर सूचना देंगे। स्वयं कहना असम्भव है, तू कह नहीं सकता अब बता तो सही किससे और कैसे कहूँ ?"

अब इसकी युक्ति उसके पास भी न थी, वस्तुतः कालवश हर प्रकार के दिमाग़ी तर्क-वितर्क के बाद वही हाल हुआ कि "मुल्ला को दौड़ मसजिद तक।" अर्थात् आरफ़ा को अपना हमदर्द तथा विश्वास-पात्र बना कर घर लौट आऊँ और अन्त में फिर उसी विपत्ति में पड़ जाऊँ, फिर उसी मानसिक तथा हार्दिक क्लेश में तड़पूँ। वह मानसिक क्लेश जिसका अनुमान लगाना साधारणतः सरल नहीं।

नौवाँ परिच्छेद

रहस्य-उद्घाटन

(१)

आरफ़ा के यहाँ से आये हुये एक सप्ताह व्यतीत हो चुका था और इसी बीच में यह परिस्थिति थी कि प्रत्येक स्वाँस पर उलझन बढ़ रही थी और उस पर मजा यह कि मैंने एक विचित्र बात मालूम की। एकदम से मुझे अम्मा जान के एक वाक्य पर अनुभव हुआ कि, अब से नहीं, बहुत पहले से वह मेरी दशा पर

विचार कर रही थीं। उनकी तमाम पिछली बातें एक-एक करके दिल में खटकने लगीं तथा एक बात से दूसरी बात की कड़ी जो मिलाई तो स्पष्ट दिखलाई दिया कि अब से नहीं वरन बहुत पहिले से मुझ पर सन्देह करती हैं। और फिर इसी अनुभूति के उत्पन्न होते ही मैंने अपनी स्थिति की ओर ध्यान दिया. मेरी शारीरिक दशा में ऐसा परिवर्त्तन हो चुका था कि मैं जिसे उठते-बैठते गुप्त रखने की इच्छुक थी। अब जो मुझे अम्मा जान की ओर से ऐसा अनुभव हुआ तो मैंने देखा कि उठते-बैठते उनकी दृष्टि मेरे ही ऊपर है, वह मेरी गति-विधि को किस प्रकार देखती हैं! अतः यह हुआ कि वह मुझे इन्हीं नजरों से अपनी जान में छिप कर देख रही थीं कि मानो मैंने उनको पकड़ लिया। मेरी और उनकी आँखें चार हुईं तथा उनकी और मेरी दोनों की दशा यह हुई कि जैसे मैं चार था और उन्होंने पकड़ लिया हो। मेरे हाथ में एक डिब्बे का ढकना था तथा सामयिक घबराहट के कारण वह हाथ से छूट पड़ा। उन्होंने मेरी स्थिति तथा अव्यवस्था का अनुभव किया और दूसरी ओर मुँह फेर कर जँभाई ली और मेरी यह दशा कि मैं सीधी कमरे में मुँह छिपा कर बैठ गई। मेरा हृदय धड़क रहा था, और शरीर पसीने-पसीने हो रहा था।

(२)

मुझे कमरे में आये अभी पाँच मिनट भी न हुए होंगे कि द्वार पर आहट हुई, हृदय पर आरी-सी चलती हुई मालूम दी। चेहरे का रंग उड़ गया, मुख मलीन हो गया, हलक़ में काँटे पड़ गये और कुछ विचित्र घबराहट-सी होने लगी। अम्मा जान मेरे पलंग के पास आकर जो बैठी हैं तो मुझे स्पष्ट हो गया कि अब भेद छिपा नहीं है। वास्तविक घटना से परिचय प्राप्त करने नहीं

आई हैं बल्कि निश्चय रूप से उसे समझने आई हैं। यह समय मेरे लिए कैसा कठिन था, इसका अनुमान लगाना जरा असम्भव है। विश्वासपात्र बनने की चेष्टा करते हुए उन्होंने मुझे ठोंक दिया तथा अपनी समझ से स्थिति में परिवर्त्तन लाते हुए पूछा—"यह तुझे क्या हो गया है ?"

बस उनका यह कहना था कि मैं बेबस हो गई। मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। वह तो सब कुछ जानती ही थीं। उन्होंने विकल होकर मुझे झपट कर सँभाला। गले से लगा कर ममतापूर्ण स्वर में कहा—"चुप, चुप! खामोश!" बस इतना कह कर वह शीघ्रता से चली गईं।

इसके आध घंटे के बाद ही उनकी मुँहबोली मौसी आईं। वह अम्मा जान के पास गईं और वहाँ से सीधी मेरे पास आईं और आते ही मुझसे यह कह कर न छिप सकने वाली बात पर प्रकाश डाला कि "बेटी, अब छिपाने की बात नहीं और न छिपाई जा सकती है।"

मेरी स्थिति और दुःख का अनुमान लगाना सरल है, यह मालूम हुआ कि लज्जा भी ऐसा वस्तु है जिसकी प्रधानता से मौत का पसीना आ जाता है। सारांश जिस प्रकार भी बन पड़ा, रो-रो कर मुँह छिपा कर टुकड़े कर-करके मैंने अक्षरशः आप-बीती सुना दी। या यों कहिए कि उन्होंने पूछ लिया। इसके उपरांत भली-भाँति मुझे देखा और सम्वेदना प्रकट की। समझाया और चुमकारा, किन्तु साथ ही चेतावनी के रूप में कस कर एक झिड़की भी दी कि आखिर इतने दिन तक मैंने क्यों इस विषय का छिपाये रक्खा। मैं भला इसका क्या उत्तर देती ? कैसे कह देती कि इस आशा पर चुप रही कि समझी थी कि बात आई-गई हो गई।

मेरे पास से उठ कर वह गईं और वाल्दा साहबा के रोने की एक दबी हुई चीख ने मुझे सूचित कर दिया कि उन्होंने सम्पूर्ण विवरण माता जी को सुना दिया। किन्तु वह सामयिक बेचैनी थी, और यह शीघ्र ही चुप हो गईं कदाचित् इसी कारण से कि शीघ्र से शीघ्र इस बात के पर न लग जायँ।

एकदम से ऐसा मालूम हुआ कि एक नीरवता छा गई, तथा बात वहीं की वहीं घूँट कर रख दी गई।

वालिद साहब से बड़ी देर तक अम्मा जान ने बातें कीं और असाधारण रूप से वह अपने कमरे में बन्द होकर रह गये।

(३)

इसके दूसरे ही दिन ऐसा मालूम हुआ कि घटनाओं ने दूसरा ही रूप धारण किया है। घर की गति वही थी। वार्तालाप भी वही था तथा स्पष्ट रूप में नित्य-क्रम उसी प्रकार चल रहे थे, किन्तु एक शोकातुर नीरवता-सी बरस रही थी।

इसके बाद कष्टों में परिवर्त्तन हुआ, घर के धैर्य तथा शांति की अपेक्षा घर वालों को हार्दिक क्लेश पहुँच रहा था जो कदाचित् मेरी मृत्यु हो जाने पर भी इस सीमा पर न पहुँचता, वह क्लेश जो किसी आत्मीय की मृत्यु से अधिक हृदय-विदारक तथा प्राणलेवा है। मैं देखती थी कि उठते-बैठते निरन्तर घर वालों के दिलों में कष्ट कर तथा दुखदायी बर्छियाँ-सी लग रही हैं! सारांश मैं हार्दिक क्लेश की अंतिम सीमा पर थी। मैं देख रही थी शोक के विषधर चंगुल किस प्रकार समस्त घर वालों के हृदय-तल में अपनी तीव्र तथा विषपूर्ण नोकें गाड़े हुए हैं और लोहित तथा निर्दय, भयानक शोक-चंगुल किस प्रकार अंतरात्मा में चुभ कर ऐसी फुरेहरी लेता है कि

दुःख से तड़पते हैं, किन्तु तड़पना असंभव, रोते हैं परन्तु रोना संभव नहीं।

(४)

घर की विपत्ति का यदि प्रारम्भ हुआ तो मानो मेरा दुःख अपना चरम सीमा को पहुँचा! .ख़ुदा का क़हर साकार रूप में मुझ पर फट पड़ा। निःसन्देह मेरे ऊपर .ख़ुदा का क़हर था। मैंने अपने आदरणीय तथा पूज्यनाय पिता जी को खिड़की में से झाँक कर देखा। उनके दीप्तमान् मुख पर मलीनता के बादल मँडरा रहे थे। वह मलीनता जो साल भर पहिले मँझले भाई को असमय मृत्यु पर भी दृष्टिगोचर न हुई थी! यह तो एक भयंकर मलीनता थी! मैंने .ख़ून के आँसू अपनी आँखों से बहाते हुए अपने प्रिय पिता की सचमुच टूटी हुई कमर को देखा जिस पर घरेलू चिन्ताओं का भार था। ताज्जुब है ख़ुदा का कि कड़ियल जवान तथा सुयोग पुत्र की मत्यु का शोक कैसी वीरता से उन्होंने सहन किया किन्तु इस दुःख ने तो सचमुच एक दिन में ही उनकी कमर तोड़ दी।

मैंने देखा कि वे बरामदे में खड़े वाल्दा साहबा से चुपके-चुपके बातें कर रहे हैं। चेहरे पर दुःख की घटा छाई हुई है। मेरे देखते-देखते बातें करते-करते उनके उदास किन्तु दीप्तिमान् चेहरे पर शोकाकुल कंपन-सा आया। सशक्त तथा बलिष्ठ हृदय की पेशीयाँ टूटती-सी मालूम दी। क्षणमात्र में बर्छियाँ मारते-मारते शोकरूपी दैत्य ने एक गदा घुमा कर दिया। सहिष्णुता के बंद टूट गये तथा मेरे देखते-देखते क्षणमात्र में इस भयंकर दैत्य ने पुरुषत्व को परास्त कर दिया और निर्बल नेत्रों ने पराजित होकर नदियाँ-सी बहा दीं, मुर्झाये हुए चेहरे पर से ढुलक-ढुलक कर आँसुओं ने दाढ़ी को तर करना शुरू किया।

वाल्दा साहबा का भी यही हाल हुआ। उनकी दृष्टि आहिस्ता से अपने शोकातुर पति की ओर गई। आँखें चार होती हुई थीं कि मालूम हुआ कि पुरुष फिर पुरुष ही है। किस सफ़ाई से वालिद साहब ने फ़ुर्ती से रूमाल से अपना मुँह पोंछा। एक आह खींची। आकाश की ओर देखा। पुरुषत्व को एकत्र करके अपनी भावनाओं को कुचल कर कहा—"मुझे कचहरी की देर हो रही है। खाना लाओ।"

अत: मैं क्या बयान करूँ कि पिता जी की दशा कैसी थी और कितनी दयनीय थी। मैं स्वयं विपत्ति में पड़ी थी किन्तु सच तो यह था कि उनकी विपत्ति का कारण मैं थी और मेरी मुसीबत उनके दु:खों की वजह से और ज़्यादा हो गई थी। उनकी अवस्था को देखिये और फिर यह दु:ख! उनकी सूरत देख कर मुझे दया आती थी। उनके हृदय पर क्या बीतती होगी! क्या सोचते होंगे दिल में! यह वह प्रश्न थे जो मुझे अधमुआ किये दे रहे थे।

(५)

अम्माजान ने बुद्धिमानी यह की थी कि पहले ही दिन दासी को जवाब दे दिया था तथा अब घर में घरवालों के अतिरिक्त कोई दूसरा न था, अन्यथा भंडा फूट चुका होता।

घर का घर शोकातुरता से नि:स्तब्ध था। घर की प्रत्येक वस्तुएँ रुदन कर रही थीं। एक मनहूस तथा भयंकर नीरवता घर पर छाई थी। प्रत्येक वस्तु से घबराहट और दीनता और लाचारी इस प्रकार प्रकट हो रही थी कि मानो घर पर विपत्ति नहीं बल्कि तबाही छाई हुई है।

फिर यह समस्त दु:ख व वेदना, शोक व संताप तत्कालीन नहीं था! किसी स्वजन की असामयिक मृत्यु की भाँति! बल्कि अनवरत और अवांछनीय था जिसकी सीमा का अंत न था!

इन सारी घटनाओं पर ध्यान दीजिये कि समाज का यह अपराधी किस दण्ड के योग्य है।

(६)

किन्तु यह सब कुछ भी इस भयंकर अपराध के परिणाम का प्रारम्भ ही था, अन्त किसने देखा था! अभी तो बर्बादी तथा नहूसत की ओर बढ़ता ही क़दम था। चुनांचे अगला स्टेज इस दु:खद ड्रामे का यह है कि घर के बाद बाज़ार पर नौबत आई। अर्थात् यह बात जो गुप्त रखने की थी अब घर से निकल कर मुहल्ले में पहुँची। वहा मसल हुई कि "होठों निकली, कोठों चढ़ी।"

जिस रोज़ कि खाला साहबा के सामने मैंने सब कुछ स्वीकार किया था, उसी रोज़ का ज़िक्र है कि एक अत्यंत ही विश्वास-पात्र स्त्री मुझे देखने के लिए बुलाई गई थी, उसने इस बात को प्रमाणित कर दिया कि अब इस भेद को छिपाये रखना किसी प्रकार संभव नहीं। हर तरह से विश्वास कर लेने पर उसे बुलाया गया था तथा भेद प्रगट न होने देने का उसने वचन भी दिया था। उसके दूसरे ही दिन खालाबी मेरी ससुराल भेज दी गईं ताकि जल्दी से जल्दी मेरी विदाई की व्यवस्था करें क्योंकि वास्तव में प्रस्ताव कुछ और हो चुका था। अर्थात् इस अपराध के सिलसिले में अब माता-पिता स्वयं एक और अपराध करने का विनाशकारी इरादा कर चुके थे। यह तदबीर की गई थी कि किसी होशियार तथा चालाक स्त्री की सहायता से मुझे इस भार से हलका करा दिया जाय और उसके बाद ही मैं शीघ्र से शीघ्र अपने पति के घर पहुँचा दी जाऊँ। किन्तु इस स्त्री ने इस सिलसिले में सहायता देने से साफ़ इन्कार कर दिया था तथा अब किसी दूसरी की खोज थी और कदाचित

किसी न किसी तरह यह बात फूट निकली और घर से मुहल्ले में पहुँच गई। परिणाम स्पष्ट है।

(७)

आने जाने वाली तथा पड़ोस की दूसरी स्त्रियों का किसी बहाने से घर में आना और देखना कि घर की हवा ही कुछ और है, एक मुर्दनी है कि छाई हुई है। मुझे देखना कि मुँह छिपाये हूँ, सामने नहीं आती। मेरे बीमार होने का बहाना नहीं बल्कि बहाने और वह भी इस कौशल से कि जैसा अवसर देखा, बात बना ली। किसी से कुछ और किसी से कुछ। फिर झूठ बोलने वाला बातें तो कंठस्थ रखता नहीं।

फिर देखने और भाँपने वालियों ने मुझे देखा भी। और न क्यों देखतीं। और फिर इन देखने और भांपने वालियों में कैसी-कैसी 'परदार' थीं। ऐसी कि लड़की के पैर की आहट से पता चला लें कि क्या मामला है, एक नज़र में ताड़ जायँ। सारांश मुहल्ले वालों को पता चला नहीं, बल्कि चल चुका था। कोई मुँह पर तो कहता नहीं किन्तु उड़ती-उड़ाती अन्त में सुनी ही गई। वालिद साहब के दो-एक मिलने वालों ने 'ग़लत खबर' उड़ाने वालों की ख़ुद वालिद साहब से शिकायत की, और इस दुश्मनी की वजह पूछी, नतीजा ज़ाहिर है; अर्थात् यह कि वालिद साहब ने वाल्दा साहबा से बहुत जल्द कह दिया कि अब वह इस स्थान में मुँह दिखाने योग्य नहीं रहे। और यह कि बात फूट चुकी थी, तथा मेरी 'चिन्ता' भी तो करनी थी, अतः इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय ही न था कि शीघ्र छुट्टी लेकर देश चलें। वस्तुतः जितना शीघ्र सम्भव था, छुट्टी ली तथा यह विचार कर घर को ठानी कि वहाँ किसी को मालूम ही नहीं है अतः मेरी फ़िक्र भी आसानी से संभव होगी, सब

यही समझेंगे कि लड़की का विवाह करने आये हैं। बस बिना इसकी प्रतीक्षा किये हुए कि खालाबी ने मेरी विदाई के बारे में क्या निश्चय किया है शीघ्र से शीघ्र हम लोग देश पहुँचे। इतनी जल्दी और एकदम से हम लोग गये हैं कि देश पहुँच कर भाई साहब को सूचित किया गया कि हम सब यहाँ आ गये हैं, उन बेचारे को इन बातों की कोई सूचना ही न थी।

(८)

देश पहुँचने के चार रोज बाद खालाबी साहबा मिलीं और यह सूचना लाईं कि मेरी ससुराल वाले अभी विदाई के लिए तय्यार नहीं, बल्कि आश्चर्य कर रहे हैं कि जब उनकी ओर से ज़ोर दिया गया था तो मजबूरी प्रकट की गई थी और अब खुद इतनी जल्दी मचा रहे हैं।

एक ज़ोरदार पत्र ससुराल वालों को और लिखा गया कि शीघ्र से शीघ्र मुझे बिदा करा ले जायँ, नहीं तो फिर केवल बिदाई के लिए दोबारा हम लोगों को देश आना पड़ेगा। तथा इधर सचमुच एक अनुभवी स्त्री को बुला कर मुझे दिखाया गया और उसके सुपुर्द यह काम हुआ कि शीघ्र से शीघ्र मुझे मुक्त करा दे। उसे काफ़ी रुपया दिया गया तथा और देने का वचन दिया गया। उसने तीसरे ही रोज कह दिया कि अमूल्य समय नष्ट हो चुका है अगर अब ऐसा किया गया तो मेरी जान का खतरा है जिसकी वह किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं होगी। सारांश यह कि जो रुपया ले चुकी वह ज़ब्त और काम खतम।

किन्तु तोबा कीजिए, खुदा की पनाह! ज़रा इस अपराध की भयंकरता और क्रूरता पर ध्यान दीजिए। वही माता-पिता जिन्होंने मेरा पालन-पोषण किया तथा तरुण अवस्था को पहुँचाया। वही माता-पिता जो प्रेमवश मेरे ऊपर प्राण अर्पण

करते थे, उन्होंने कदाचित् आज ही के दिन के लिए मुझे परवान चढ़ाया था ! कि एक कुकर्मी के पंजे में फँस कर जब घर का नाम डुबोने लगूँ तो इस नैया को भँवर से निकालने के लिए मेरे ही प्राणों की बलि दी जाय।

फलतः उस स्त्री से कह दिया गया कि चिंता नहीं, प्राण रहे अथवा जाये तुम चिकित्सा करो अतः मैं अब इस प्राण लेवा विपत्ति की सचमुच भयंकर मंज़िलें तय करने के लिए तय्यार थी, आप विचार करेंगे कि कदाचित् यह मेरे दुःखों का अन्त था ! तोबा कीजिये ! भला अन्त किसने देखा था । किन्तु ज़रा ध्यान तो दीजिए कि यह सारी मुसीबतें मेरे ऊपर केवल इस वजह से पड़ीं थीं कि सामाजिक नियम ही कुछ ऐसे हैं। जब यह देखने की इच्छा होती है कि किसी जाति विशेष में नेकचलनी अथवा बदचलनी का स्तम्भ क्या है ? जब कोई देखना चाहता है कि एक विशेष जाति कहाँ तक जातीय दृष्टि-कोण से नेक-चलन या बदचलन है, तो दुर्भाग्य तो देखिए कि संसार के दार्शनिक नहीं तो कम से कम भारतवर्ष के फ़िलासफ़रों ने तो यही नियम रक्खा है—उन्हें इससे बहस नहीं कि विषय क्या है, वह तो केवल यह देखने के इच्छुक हैं और देखते हैं—कि इस जाति में अत्याचारी के शिकार, अथवा प्रताड़िता के साथ कितना कठोर व्यवहार किया जाता है ? यदि वह देखते हैं कि जाति एक प्रताड़िता के साथ दुर्व्यवहार करती है तथा उसका अनिष्ट होता है तो वह प्रसन्न हो जाते हैं और पुकार कर कहते कि निःसन्देह अमुक जाति वाले अत्यन्त सदाचारी हैं। बहुत ही नेकचलन हैं ! सदाचार का स्तम्भ भी यही है कि प्रताड़िता पर इतना अत्याचार किया जाय कि नर्क के कष्टों की अभिलाषा करने लगे। सर्वथा उसी प्रकार, जिस प्रकार मैं स्वयं नर्क के

कष्टों को उन दुःखों से कहीं अधिक उत्तम तथा प्रिय समझती थी, जो मेरे ऊपर घट रहे थे ।

किन्तु अब तो न केवल माता-पिता राजी थे बल्कि मैं स्वयं राजी था कि एक अपराध को छिपाये रखने के लिए अब दूसरा अपराध किया जाय । चाहे प्राण रहे अथवा जाय ।

दसवाँ परिच्छेद

विपत्ति

(१)

हमारा मकान इस तरह पर था कि मकान के अन्दर मकान बना था । एक मर्दाना मकान था, उसको पूरा तय करके आओ जब जनाना मकान आता था । और यह सौभाग्य था कि आने-जाने वालियों को पूर्णतया असुविधा होती थी । तथा कोई आत्मीय स्वजन या अन्य ... ई स्त्री बिना पर्याप्त सूचना के आ ही नहीं सकती थीं । फिर मामूली रोक-थाम से ऐसी-वैसी आने-जाने वालियों का बिलकुल ही रोक हो गई थी । आत्मीय स्वजनों से वह लोग प्रायः अपरिचित ही होते हैं जिनके माता-पिता की आयु विदेश में नौकरी पर कटती है । और फिर मेरे विवाह का विषय उपस्थित था । अतः पर्याप्त बहाना था कि कोई भी आये (चाहे बहुत ही अपना प्रिय हो) किन्तु मैं एक अँधेरे कमरे में घुस जाऊँ । वाल्दा साहबा ने सिखा दिया था कि ऐसे अवसर पर मैं लाख-लाख कहूँ किन्तु तू अपने स्थान से न हिलना । अतः यदि निकट सम्बन्धियों में से कोई बीबी आतीं तो यही होता और अम्मा जान मुझे डाटतीं, झिड़कतीं फिर

स्वयं ही कह देतीं कि "अच्छा है बुआ आजकल की लड़कियों का लज्जाशील होना आवश्यक है।" वस्तुतः आगन्तुक बीबी अधिक से अधिक यही करतीं कि जब मैं किसी प्रकार न निकलती तो स्वयं कमरे में घुस आतीं और मैं उसी भाँति बैठे-बैठे ज़रा मुँह फेर कर नमस्कार कर लेती और वह चली जातीं, अतः अब इस तरह बड़े इतमीनान के साथ मेरा खौफ़नाक इलाज हो रहा था।

सप्ताह भर के इलाज ही ने मुझे अस्त-व्यस्त कर दिया। मैं अचेत-सी रहने लगी और नौबत यहाँ तक पहुँची कि मालूम हुआ कि दिनों की नहीं, बल्कि शायद घंटों की मेहमान हूँ। किन्तु सब व्यर्थ हुआ और मजबूरन मेरी प्राण-रक्षा के लिए चिकित्सा करने से हाथ रोक लिया गया। इस इलाज के साथ ही साथ ससुराल वालों पर भी विशेष रूप से ज़ोर डाला जा रहा था कि शीघ्र से शीघ्र बिदा करा ले जायँ।

इस बीच में पत्रोत्तर का यह परिणाम निकला कि मेरी ससुराल वालों ने विवाह की तारीख भी नियत कर दी, और इधर चन्द रोज़ बाद जब मैं ठीक हो गई तो चिकित्सा आरम्भ हुई। और उसकी रफ़्तार इतनी आशापूर्ण तथा संतोषप्रद थी कि मालूम हुआ कि सारे दुःखों का अन्त हो जायगा। किन्तु ठीक उस अवसर पर जब कि सारी चिन्ताओं से मुक्ति प्राप्त होती दिखलाई दी, और सफलता की झलक दृष्टिगोचर हो रही थी, विपत्ति ने सर्वथा नवीन रूप धारण किया। विपत्ति क्या आई एक बला आ गई।

(२)

बात वास्तव में यों हुई कि हमारे शत्रुओं ने नहीं, बल्कि चिकित्सक के शत्रुओं ने हमें नहीं बल्कि स्वयं उसे हानि पहुँचाने

के लिए पुलीस में इसकी सूचना कर दी। पुलीस ने दौड़ कर उस स्त्री को पकड़ा। वह इसी अपराध में दो बार पूर्व भी दण्ड भोग चुकी थी। पुलीस ने मार-पीट कर उससे स्वीकार करा लिया और वालिद साहब की थाने पर तलबी हुई।

पिता जी को अथवा हम लोगों को सन्देह भी न हुआ कि क्यों पिता जी की तलबी हुई है। यही समझे कि कोई मुहल्ले का मामला होगा। वह बेधड़क शान्तिपूर्वक चले गये किन्तु वापस जो आये तो आते ही बेदम होकर धम से फ़र्श पर गिर पड़े। अम्मा जान और हम सब यही समझे कि यों ही थकान अथवा और इसी प्रकार के किसी कारण से ऐसा हुआ है, किन्तु शीघ्र ही मालूम हो गया कि वास्तविकता क्या है। मालूम होते ही मेरे तन-बदन में सन्नाटा आ गया, पसीना-पसीना हो गई तथा सचमुच चेतना न रही कि देखती कि अम्मा जान का क्या हाल है।

अब हालत यह थी कि मुक़दमा उठ खड़ा हुआ था। मान-मर्यादा गई और मालूम हुआ कि अब सब कुछ गया। बहुत शीघ्र बात की यथार्थता तथा घटना की वास्तविकता का विस्तार मुझे पूर्ण रूप से मालूम हो गया। अब ऐसे अवसर पर स्पष्ट है कि हम लोगों की क्या दशा हुई होगी। इसके अतिरिक्त कोई और उपाय ही न सूझ पड़ता था कि रुपया-पैसा तथा दहेज का साज व सामान आदि जो कुछ मेरे लिए तैयार था मुक़दमे की भेंट किया जाय तथा जिस प्रकार बन पड़े पुलीस वालों का पेट भर के इस मामले से पिंड छुड़ाया जाय। किसी ने कहा है कि विपत्ति अकेले नहीं आती अतः अब मालूम हुआ कि उसके नेतृत्व में और भी मुसीबतें हैं यही नहीं दरिद्रता भी आकर अब तो दंडवत कर रही है।

(३)

दो दिन वह हैरानी व परेशानी रही कि .खुदा दुश्मन को भी न दिखाये किन्तु शायद भाग्य सीधे थे, इलाज इत्यादि तो बिदा हुए थाने की दौड़-धूप में। .खुदा ने एक सूरत पैदा कर दी। थाने के एक मुन्शी को अल्लाह जाने किस तरह रहम आ गया। वालिद साहब उसके यहाँ रात्रि में गये, अपनी सारी मुसीबत उसको सुनाई, आदि से अन्त तक। तथा उससे कहा "कि ईश्वर के लिए हमारे ऊपर दया करो। .खुदा को खुद शायद रहम आ गया। और उसने उसका दिल मोम कर दिया, और वह भी इस प्रकार कि उसने पैसा-कौड़ी कुछ न लिया और पूर्ण रूप से सहायता करने का वचन दे दिया। किन्तु इस शत पर कि मेरा इलाज एकदम बन्द कर दिया जाय, वालिद साहब ने ज़ोर देकर चाहा कि यह शर्त हटा ली जाय तो उसने कह दिया कि निजी रूप में उसे कोई आपत्ति नहीं। परन्तु यदि ऐसा हुआ तो फिर खैर नहीं है। दबा-दबाया मामला उच्च अधिकारियों के पास वही व्यक्ति पहुँचा देगा, जिसने यह आग लगाई थी। अतः वालिद साहब वादा करके उस मुन्शी को आशीर्वाद देते घर आए तथा उसने भी वचनानुसार मामले को बड़ी ही सुन्दरता से रफा-दफा कर दिया।"

अब यह मामला तो रफा-दफा हो गया, किन्तु मुसीबत ज्यों की त्यों रही। कहाँ तो यह आशा था कि अब सारी मुसीबतों का अन्त हो जायगा कि इधर तो इलाज रुक गया और उधर मेरी विदाई की तारीख नियत हुई और वालिद साहब के धैर्य ने अब सचमुच जवाब दे दिया। बहुत ज़ोर देकर स्वयं तारीख नियत कराई थी। सहस्रों बहाने किये थे मजबूरियाँ ज़ाहिर की थी और अब वर्त्तमान स्थिति यह थी कि विदाई की तारीख मृत्यु

की तारीख से अधिक भयंकर थी। अब फिर मेरी ससुराल वालों को तारीख बदलने के लिए लिखना एक तमाशा था। अकारण उन्हें सन्देह का अवसर देना नहीं, बल्कि वास्तविकता से परिचित करा देने के बराबर था। क्यों कि हरदम यही भय था कि उड़ती-उड़ती कहीं वे लोग न सुन लें और सब बिदाई धरी रह जाय।

परिणाम इसका यह हुआ कि पिता जी आवश्यकता से अधिक पेरशान हो गये। यह दशा हुई कि उनके लिये नींद उड़ गई। दो दिन और दो रात उन्हें निद्रा न आई। तीसरे दिन उनके साहस ने जवाब दे दिया और वह वही कर बैठे जो हार कर एक मनुष्य कर बैठता है।

(४)

रात के कोई दो बजे होंगे कि अम्मा जान ने उठ कर सिर पीट लिया। क्योंकि सच तो यह था कि वालिद साहब ने ज़हर खा लिया था! दासी तो स्थिति देख कर कोई हमारे यहाँ थी ही नहीं, एक छोकरा था काम के लिए। जिस प्रकार बन पड़ा एक मुहल्ले वाले को उससे बुलवा कर जल्दी से छोटे चाचा को सूचना भेजवाई। डाक्टर को बुलाना खतरे से खाल न था। अतः वह झपट कर अपने एक हकीम दोस्त को लाये। उन्होंने अफ़यून का ज़हर जाँच कर बतलाया, और वैसे भी मालूम था कि अफ़्यून ही खाई है। क्योंकि शाम को वह अपने भयंकर निश्चय से वाल्दा साहबा को सूचित कर चुके थे और जब उन्होंने बहुत खुशामद-दरामद की थी तो मुश्किल से झूठा वादा कर लिया था।

जल्दी-जल्दी इलाज की तदबीरें की गईं। विषमारक दिये गये तथा क़ै कराई गई। सौभाग्य कहिए जो समय पर दौड़-

धूप हो गई, और जो कुछ भी विष था वह निकल गया। दो दिन तथा दो रात दशा अत्यन्त शोचनीय रही, किन्तु तीसरे रोज दशा किंचित सुधरी। और हकीम जी ने संतोष दिलाया कि संकट जाता रहा। खुदा-खुदा करके जान में जान आई।

मेरी इस अवसर पर क्या दशा होगी! एक बात को बार-बार दोहराना है। बस खुदा ही खूब जानता है। या मेरे अल्लाह! अब क्या होगा? इधर वालिद साहब की यह हालत, उधर मैं ज्यों की त्यों! और बिदाई की तारीख सर पर! इस घटना के पाँचवें दिन निश्चय पाया कि पिता जी की बीमारी का बहाना करके तारीख बढ़वाई जाय। अतः एक तार दिया गया।

दूसरे रोज तार का उत्तर आया। उसमें लिखा था कि इधर से पूरी तैयारी हो चुकी है। वालिद साहब को खुदा जल्द अच्छा करे। इसके बाद उन लोगों का एक लम्बा-चौड़ा पत्र आया। उसमें लिखा था कि सारे सम्बन्धियों को सूचित किया जा चुका है तथा अन्य तैयारियाँ हो चुकी हैं और अब तारीख बढ़ाना कदापि सम्भव नहीं है। सिवा मजबूरी के। आशा प्रकट की गई थी कि वालिद साहब की तबीयत उस समय तक ठीक हो जायगी और यदि खुदा न करे ऐसी ही तबीयत खराब हुई तो मजबूरी है। वस्तुतः ऐसी-वैसी बीमारी बिदाई में बाधक नहीं हो सकती। फिर इसके साथ यह भी लिखा था कि यदि इस अवसर को टाल दिया गया तो बात दूर जा पड़ेगी जो उन्हें किसी प्रकार स्वीकार नहीं। सारांश उनके बहाने अपने स्थान पर बिलकुल ठीक थे, किन्तु इधर से एक और तार गया जिसका आशय इसके अतिरिक्त वह और क्या समझते कि वालिद साहब की तबीयत अच्छी हो या न हो, तारीख बढ़ जाय। अतः उन्होंने उसका यही अर्थ लिया और उत्तर में अपनी बात पर

क़ायम रहे। अर्थात् यह कि यदि ख़ुदा न करे ऐसी बीमारी हुई कि सचमुच बिदाई असम्भव है तो उसमें कहने-सुनने की गुंजाइश ही क्या है, देखा जायगा किन्तु अभी से बीमारी को 'आशा' पर तारीख़ स्थगित करना स्वीकार नहीं।

अब ऐसी दशा में इसके अतिरिक्त और क्या उपाय था कि शीघ्र से शीघ्र जिस प्रकार सम्भव हो मेरे चिकित्सा का पुनः प्रबन्ध किया जाय। बस इस प्रस्ताव का होना था कि शीघ्र ही मंजूर भी हो गया और फिर उसी अपराध की तैयारी थी जिसका वालिद साहब प्रायश्चित कर चुके थे।

(५)

आकाश फट पड़े उस पर, धरती खा जाय उसे, सर्प डस ले उस लड़की को जिसके बाप और चचा पर क़हरे ख़ुदा इस रूप में गिरे कि वह उस अभागिनी लड़की का इस प्रकार की चिकित्सा के लिए परेशान हो। संसार का कोई व्यक्ति इस ईश्वरीय कोप की प्रचंडता तथा उस दुःख की महानता का अनुमान उस समय तक नहीं लगा सकता जब तक कि परमात्मा स्वयं उसे ऐसा बुरा दिन न दिखलाये। उफ़ परमात्मा दुश्मन को भी इससे सुरक्षित रक्खे।

हकीम साहब चचाजान के परम मित्र थे और उनमें कोई भेद छिपा हुआ न था अतः अब यह निश्चय पाया कि इस विषय में उनसे सहायता ली जाय। सोचने की बात है कि जिस विषय में पुलीस तक को सूचना मिल चुकी हो और ख़ुदा ख़ुदा करके दब गया हो उसमें कान हाथ डालेगा फिर कैसे ही कोई समझदार आदमी इसमें क्यों पड़े। इसलिए बड़ा कठिनाई से साहस करके न मालूम किस भाँति हकीम साहब से प्रार्थना जो की गई तो उन्होंने घबड़ा कर क्षमा-प्रार्थना की कि मैंने न कभी

ऐसी चिकित्सा की और न मुझे इसका अनुभव है और न मैं कर ही सकता हूँ और न सलाह ही दे सकता हूँ।

किन्तु जब चचा जान ने उन पर जोर डाला, परिस्थिति समझाई कि किस प्रकार मान और मर्यादा का प्रश्न उपस्थित है तो वह किसी न किसी प्रकार अन्त में राजी हो गये, किन्तु जब उन्होंने सचमुच चिकित्सा करने के अभिप्राय से सविस्तार हाल पूछा, हिसाब लगाया तथा दो बार की असफल चेष्टाओं का वृत्तान्त सुना और फिर इसके बाद उस चिकित्सा करने वाली स्त्री को बुला कर भूत तथा वर्तमान परिस्थिति की जाँच की और उन औषधियों को मालूम किया जो मुझे दी जा चुकी हैं तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि वर्त्तमान स्थिति में ऐसी चेष्टा करना खतरे से खाली नहीं। पहली बात तो यह हुई तथा दूसरी बात यह कि मान लो यदि सफलता मिली और मेरे प्राण बच भी गये तब भी एक दूसरे खतरे की शंका थी अर्थात् मेरे मस्तिष्क के विकृत हो जाने का भय था। अलावा इसके यह तो स्पष्ट था ही कि बीमारी के सिलसिले में कदाचित् छः-सात महीने चारपाई गोड़ना पड़े।

यह सारी बातें सुन कर सब के हाथ-पैर ढीले पड़ गये। किन्तु यह सब सामयिक बात थी और शीघ्र ही यह निश्चय पाया कि इन समस्त उलझनों के होते हुए भी मेरी चिकित्सा कराई जाय! चाहे कुछ भी हो जाय और अब तो यों भी तारीख बढ़ाने के लिए लिखना यों ही खतरनाक है इसलिये सोचा गया कि समय से पूर्व इस प्रकार की बातें करके अकारण उन लोगों को सन्देह में डालना होगा और आश्चर्य नहीं तारीख की पल्टा-पल्टी की चेष्टा में भेद प्रकट हो जाय।

उधर तो सब का यह खयाल था और यहाँ अब मेरी हालत बिल्कुल ही भिन्न थी। जान बहुत प्यारी होती है, इतनी कि इसके

अनुमान लगाना उस समय तक सचमुच कठिन है जब तक कि यह अनुभव न हो जाय कि जान देना कितना दुःखद और कठिन है। गत चिकित्सा की तकलीफों का मुझे भली-भाँति अनुभव था। किस प्रकार मृत्यु के चंगुल में पहुँच चुकी थी अलावा इसके हकीम साहब ने और भी खतरों से आगाह कर दिया था। फिर इस बात पर भी मुझे पूर्ण विश्वास नहीं था कि जान जोखिम में डालने से बला टल ही जायगी। कोई सोलह आने की उम्मीद तो थी नहीं फिर ऐसी दशा में मुझे यदि चिकित्सा कराने में आपत्ति हो तो कौन-सा आश्चर्य है। मैंने विचार जो किया तो ज्ञात हुआ कि यह तमाम बातें केवल बनावटी हैं। मैं यदि बच भी गई तब भी एक न एक दिन किसी न किसी प्रकार इस रहस्य का भंडा-फोड़ होगा और तब सख्त मुसीबत का सामना करना होगा। लेकिन यह तो सब बहाने थे, सच तो यह था कि मैं केवल झूठी आशा पर निर्भर रह कर चिकित्सा में पड़ कर मृत्यु-वेदनाओं में दुबारा पड़ना नहीं चाहती थी। घटनाओं ने लज्जा और संकोच के विषय में मुझे सचमुच चिकना घड़ा बना दिया, और मैं निर्लज्ज भी हो गई थी इसीलिए दबी जबान से अम्मा जान से मैंने चिकित्सा कराने से इन्कार कर दिया।

(६)

जैसा कि मैं निवेदन कर चुकी हूं, लज्जा और संकोच मुझसे विदा हो चुके थे। विशेषतः वालिद साहब की बीमारी की वजह से क्योंकि हैरानी और परेशानी में उनकी सेवा-सुश्रूषा करने में अम्मा जान का हाथ बटाने वालों में भी थी। अतः लज्जा और संकोच के आधार पर मेरी अस्वीकृति का महत्व कुछ भी हो, किन्तु फिर भी मेरे इन्कार पर वालिद साहब और चचा

जान आदि ने आश्चर्य ही प्रकट नहीं किया वरन् नाराज और परेशान भी हुए। किन्तु मैं निश्चय कर चुकी थी, इलाज के भयंकर परिणाम तथा दुःखों का भली-भाँति अनुमान और तजुर्बा कर लेने के बाद शायद दुबारा इनका सामना करने को तैयार न थी।

मेरे इन्कार को घर वालों ने तो सब ने नापसंद किया, किन्तु हकीम साहब ने मेरे प्रस्ताव का समर्थन किया, वह भी कदाचित् इस कारण से कि उनकी जान छूट गई। कुछ भी हो, उन्होंने मेरा समर्थन किया, बल्कि और जोरदार शब्दों में कह दिया कि चिकित्सा कराना अब मेरे प्राण लेने के समान होगा।

अब वर्तमान स्थिति में प्रश्न यह था कि फिर क्या होगा? मुझसे अम्मा जान ने सर पीट कर पूछा—"अभागिनी! ऐसे प्राण प्रिय हो गये कि कुल की लाज की चिन्ता न रही, किन्तु अब तू यह बता कि फिर क्या होगा।"

मैंने उसका यह उत्तर दिया कि जिस प्रकार सम्भव हो सके तुम लोग मुझे चुपचाप बिदा कर दो, मैं वहाँ जाकर भुगत लूँगी जैसे भी बनेगा। मेरा कोई दोष नहीं न मुझे किसी का भय है। वास्तव में लाचारी और मजबूरी मुझे विवश कर रही थी कि अपनी निर्दोषिता की आड़ पकड़ूँ तथा इस बहाने के साथ मैं अपने में एक अवर्णनीय साहस का अनुभव कर रही थी। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सब कुछ जो मैंने किया वह मेरी निर्बलता थी; मुझे किंचित मात्र डरना अथवा झिझकना नहीं चाहिए था। किसमें साहस है जो मुझे बुरा कहे। मजाल नहीं जो मुझे कोई अकारण लज्जित करे, कोई आवश्यकता नहीं जो मैं चोरों तथा दगाबाजों की भाँति मुँह छिपाती फिरूँ, जबकि मेरी अन्तरात्मा शुद्ध है और मैं सच्चे अर्थों में निर्दोष

हूँ चाहे पति को मेरे ऊपर विश्वास हो या न हो। मैं बेधड़क अपनी निरपराधिता तथा निर्दोषिता के बिरते पर उससे आँखें चार करने को तैयार हूँ। फलतः मन ने एकाएकी दृढ़ निश्चय तथा साहस के साथ ऐसा पल्टा खाया कि मुझे आश्चर्य हुआ कि अब तक मैं अकारण संसार से क्यों मुँह छिपाये फिरती थी। कोई आवश्यकता नहीं, अकारण चोर और गुनहगार बनने की। अतः मैंने बड़ी तत्परता और कठोरता के साथ अम्मा जान से स्पष्ट कह दिया कि कोई आवश्यकता नहीं जो मैं चिकित्सा कराऊँ, तुम मुझे बिदा कर दो फिर मैं जानूँ और मेरा काम। इधर फिर हकीम साहब को जो मेरी विधि का ज्ञान हुआ तो कहने लगे कि पति फिर भी पति ही होता है। लड़की का यदि ऐसा विचार है और वह वास्तव में इस विषय में निर्दोष भी है तो खुदा उसकी मदद करेगा।

दो-तीन दिन के वाद-विवाद के बाद जब सब ने देखा कि मैं अपने निश्चय पर अटल हूँ तो क्या करते। विवश होकर यह कह कर छोड़ दिया कि जो भाग्य में है वही तो होगा। अब मेरा बारी आई कि अपने दृढ़ निश्चय एवं साहस से, तथा अपनी निर्दोषिता की घोषणा से घर वालों के टूटे हुए साहस में प्राण डाल दूँ। फिर यह भी सच ही था कि इस गड़बड़-सड़बड़ के उपरान्त भी घटना का ज्ञान अत्यन्त विश्वास-पात्र सीनों में सुरक्षित था, तथा पूर्ण आशा थी कि इस प्रकार बिदाथी भी हो जायगी और फिर उसके बाद! देखा जायगा! मैं स्वयं भुगत लूँगी।

(७)

जब मामला इस प्रकार तय होना निश्चय पाया तो अम्मा जान ने जल्दी से जल्दी मुझे मायन बैठा दिया; अर्थात् घोषणा

कर दी कि मैं पूर्ण रूप से दुल्हिन हूँ। तथा जिस प्रकार की भी तैयारियाँ आवश्यक थीं मानो सब भूल कर उनकी फ़िक्र में लगने की कोशिश की।

मेरे मन में अब न तो वह खलबली थी और न अव्यवस्था थी, बल्कि दृढ़ निश्चय तथा शांति थी। किन्तु दिन में दो-तीन बार अवश्य हिम्मत टूट जाती थी। विपत्ति अपने भयंकर नेत्रों से घूरने लगती थी तथा मैं पुनः अपने साहस की बर्छियों से इस डाइन की आँखें फोड़ देती थी किन्तु ज्यों-ज्यों दिवस व्यतीत होने लगे, साहस में एक अवर्णनीय दुर्बलता की वृद्धि का अनुभव होने लगा। किन्तु फिर भी वेदना न थी। अथवा यों कहिए कि मुसीबत और तकलीफ़ चित्त पर एक महान रोग की भाँति इस प्रकार विस्तृत होकर रह गई थी कि रोग के प्राथमिक पीड़ा की बेचैनी तो नहीं थी, किन्तु हाँ मृत्यु के समागम का धड़का अवश्य लगा हुआ था जो शनैः शनैः स्टीम-रोलर की भाँति, अपने भयंकर भार के साथ मेरी ओर चढ़ा चला आ रहा था।

दिन गुजरते गये, और थे ही कितने! एक नाक़ाबिल बयान सुकून तो नहीं मगर खामोशी के साथ गुजरते गये। प्रत्यक्ष तो यही साबित होता था कि यही खामोशी और संतोष आख़ीर वक़्त तक रहेगा और यह कदापि नहीं मालूम था कि इस खामोशी का प्रत्येक क्षण प्रलय-रूपी उत्पात का प्रारम्भ है। और ऐसा तूफ़ान आने वाला है जिसके भँवर में पड़ कर कुल के मान और मर्यादा की नाव डूब कर रह जायगी किन्तु.....।

किसी को विश्वास न था कि खामोशी के साथ मेरी विदाई हो जाने में कोई ऐसी अड़चन पड़ेगी जो क्षण-मात्र में सारी मुसीबतों और तकलीफ़ों को चरम सीमा पर पहुँचा देगी और

उस समय मुझे मालूम होगा कि जो कुछ भी मुसीबत गुज़र चुकी थी वह इसके आगे कुछ नहीं थी वास्तव में विपत्ति इसको कहते हैं।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

महान् विपत्ति

(१)

मुझे वह समय कभी भी विस्मृत न होगा जब मेहमानों से घर भर गया और मुझे सचमुच वधू-वेष पहनाया गया। मेरे धैर्य्य तथा साहस में निर्दोषिता के कारण जो पूर्ण विश्वास उत्पन्न हुआ था, वह समय-परिवर्त्तन के साथ कमज़ोर पड़ता गया था, किन्तु इस समय तो इस अरुचिकर वेष के पहनते ही जैसे बन्धन ढीले हो गये। केवल इस अनुभव ने मुझे परास्त कर दिया कि वधू का शब्द मेरे लिए उपयुक्त नहीं, तथा ऐसा कहना स्वयं इस शब्द की निन्दा करना है। तथा यह सब कुछ एक घृणित भुलावा है तथा मक्कारी और चालबाज़ी का अन्त है जिसको निरपराधिता तथा निर्दोषिता से कोई सम्बन्ध नहीं, एक अबला और कुआँरी वधू होती है! तथा एक विधवा भी वधू हो सकती है। किन्तु मैं कैसे दुलहिन बनाई या कहलाई जा सकती हूँ? मक्कारी तथा अय्यारी की अनुपस्थिति में धैर्य्य तथा साहस, निर्दोषिता और निरपराधिता का सिर बुलन्द होता है! किन्तु यहाँ तो अय्यारी और मक्कारी दुलहिन के घूँघट में छिपाई जाकर पाली जा रही है अतः पूर्णरूप से स्पष्ट था कि इस महान् योजना के साथ एक ट्रेजिक ड्रामा खेला जायगा। औ

सम्पूर्ण रहस्य का उद्घाटन होकर रह जायगा और तब यह मक्कारी और चालाकी डाइनामाइट की भाँति भक से उड़ कर रह जायगी।

(२)

बाराती आये और बड़े ठाट से आये। हमारे घर से काफ़ी फ़ासले पर बराती ठहराये गये। इधर भी यथाशक्ति पूरा प्रबन्ध किया गया था। मेरे ऊपर संकट तो पड़ा ही था किन्तु विशेषकर वह समय बड़ा ही कठिन था, जब सुना कि बराती विदा कराने अब आना ही चाहते हैं।

किस प्रकार यह धृष्टता की जा रही है? इसका क्या परिणाम होगा? जब विदा होकर वहाँ पहुँचूँगी और यह रहस्य खुलेगा तब क्या होगा? सम्भवतः वह स्वयं घबड़ा कर अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिये फ़िलहाल चुपचाप मुझे ले जायँगे फिर देखा जायगा! ना मालूम क्या होगा!

यह सब जो बीत रहा था, वह या तो मेरे हृदय पर बीत रहा था अथवा घर वालों के हृदय पर बीत रहा होगा, किन्तु फ़िलहाल तो विवाह की धूम-धाम थी। उसके अतिरिक्त मेरे घर वालों के सोचने तथा विचार करने का समय ही न था। प्रत्येक व्यक्ति बड़ी तत्परता से अपने कार्य में तल्लीन था। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यह ब्याह नहीं बल्कि ऊँचे पैमाने पर एक असफल हास्य हो रहा था।

बारात के आगमन का शोर हुआ, और मेरे दिल में मौत की-सी ठंडक बैठना शुरू हुई। जिस समय मेरी ससुराल वालियाँ घर में उतरी हैं, उस समय मेरी सारी हिम्मत थक कर चूर हो चुकी थी और मैं नीम (अर्ध) बेहोशी में थी। अम्मा जान ने ऐसा कठोर प्रबन्ध किया था कि सिवा किसी बड़े विश्वासपात्र

के मुख तक किसी का पहुँचना ही सम्भव न था, यदि सम्भव भी था तो इस प्रकार कि असलियत पर्दे में थी। मेरी दुर्बलता, रुदन तथा अचेतना यह समस्त बातें मेरे अत्यन्त लज्जापूर्ण स्वाभाव पर निर्धारित की गईं। मेरे शोक की सराहना की गई तथा कहा गया कि यह वही शोक है जो सचमुच की भारतीय वधू को घर के वियोग के कारण कुछ तो रीति-अनुसार तथा कुछ वास्तविक हुआ करता है।

अब उसका अगला स्टेज यह है कि भयानक रीतियों की तैयारियाँ शुरू हुईं। रस्में भयंकर थीं। क्योंकि सचमुच अब प्रत्येक विश्वासपात्र की अत्यन्त बुद्धिमत्ता तथा मक्कारी की कठिन परीक्षा थी। एक थोड़ी-सी डगमगाहट किंचितमात्र-सी लापरवाही से सब कुछ समय से पूर्व ही मालूम हो जाने का भय था। दूल्हा एक ऐसी वस्तु है कि उसके आगमन की सूचना भीतर-बाहर सब जगह फैल जाती है। बारात के साथ भाग्यशाली दूल्हा मियाँ भी घोड़े पर सवार होने के बजाय मोटर में पधारे, यह सूचना मेरे कानों तक भी पहुँची क्योंकि दूल्हा के आते ही घर भर में भूकम्प सा आ गया। न केवल दूल्हा का आगमन बल्कि उसका होलिया तक इस प्रकार पुकार-पुकार कर वर्णन किया गया कि हर छोटा-बड़ा सुन ले।

मैंने केवल अपने पति का न केवल हुलिया मालूम कर लिया, बल्कि इतना विस्तार-पूर्वक हाल सुना कि मानो मेरे सामने आ उपस्थित हुआ हो। छोटी-छोटी लड़कियों ने उछल-उछल कर तथा बड़ी लड़कियों ने अपना गला फाड़-फाड़ कर दूल्हा के पुरुषत्व-सौंदर्य के बारे में प्रशंसात्मक वाक्य मेरे कानों में पहुँचाये। कोई तो दूल्हा की लम्बाई-चौड़ाई का वर्णन इस सुन्दरता से करतीं कि सारी प्रशंसा का अन्त हो जाता, और

कुछ ऐसी थीं कि वेष-भूषा की दाद देती थीं। किसी की जिह्वा पर दूल्हा के रूप-रंग का वर्णन था तो किसी को दूल्हा का बाँकपन प्रिय था। किसी ने दूल्हा को लज्जाशील बताया, तो किसी और ने उसे भोला-भाला बताया, फिर तुलना करके कुछ 'कतरनियों' ने यह प्रमाणित कर दिया कि यह दूल्हा अन्य और प्रतिष्ठित, किन्तु काले-पीले तथा काने-खुतरे दूल्हाओं से कहीं अधिक सुन्दर है। और इसी सिलसिले में लगभग डेढ़ दर्जन अन्य दूल्हाओं के सचमुच जबानी कार्टून पेश कर दिए गये तथा दो-चार को कलमुहे की उपाधि दे दी गई।

सारांश यह कि तमाम बातें मेरे कानों तक भी पहुँचीं, और मुझे मालूम हुआ कि मेरा प्रिय पति सर्वगुण सम्पन्न है। उसमें वह समस्त बातें मौजूद हैं जिनके आधार पर एक वधू अपने को भाग्यशाली समझ सकती है। अतः यह बातें मेरे लिए और भी कष्टदायिनी प्रमाणित हुईं। मेरे हृदय पर वह चोट लगी कि जिसका उल्लेख करना असम्भव है, मेरे हृदय से आहें नहीं बल्कि धुआँ निकल रहा था। आँसू नहीं, बल्कि जीता खून टपक रहा था।

(४)

रीतियाँ आरम्भ ही होने वाली थीं, और मैं इस परीक्षा के लिए अपनी समस्त विस्तृत शक्तियों को एकत्र कर रही थी कि यों ही सुनने में आया कि दूल्हा मियाँ अपने किसी मित्र के यहाँ दो-एक मिनट के लिए गये थे और देर हुई किन्तु अभी तक नहीं आये हैं अतः उनकी ज़ोरों से प्रतिक्षा की जा रही है, जैसा कि इधर-उधर के एकाध-वाक्य से मैंने भी अनुमान लगाया। फिर तकाज़े पर तकाज़ा भीतर से गया। मेरी सास तथा अन्य ससुराल वाली दो-चार स्त्रियाँ मुझे बड़ी बेचैनी और कष्ट में

फँसा करके अर्थात् मेरे पास आकर तथा दो-चार रस्मों की मूर्खता-पूर्ण भूमिका रच कर उठ भी चुकी थीं। और अब हर छोटे-बड़े के मुख पर यही था कि दूल्हा मियाँ कहाँ गए। दूल्हा की अनुपस्थिति स्वयं दूल्हा वालियों और बाहर दूल्हा वालों के लिये शोचनीय विषय तो क्या होता किन्तु हाँ, वृद्धों की अप्रसन्नता का कारण अवश्य हुआ। पिता तो थे ही नहीं, दूल्हा के चचा और मामू इत्यादि अथवा इसी तरह के वृद्ध रिश्तेदार अवश्य थे। तथा अन्दर सूचनायें पहुँच रही थीं कि दूल्हा के इस ढंग से ये लोग दूल्हा पर कितना गर्म हो रहे हैं कि ज़रा ध्यान नहीं उसको ऐसे अवसर पर बिना पूछे-पाछे सब की आँखों में धूल झोंक कर चल दिया। किसी ने रोका भी नहीं, न मालूम क्या समझे।

यह तो दूल्हा वालों का हाल था, किन्तु उन लोगों का क्या हाल होगा जिनके दिल में चोर था, अर्थात् हम लोग। मैं स्वयं यह खबर सुनते ही ठंडी पड़ गई कि किसी स्त्री ने कहा कि यहाँ का थानेदार दूल्हा का मित्र है और उसी के साथ गये हैं। क्या पुलीस के ज़रिये रहस्य खुल गया? यह प्रश्न मेरे मन में तो आया ही था, जो मैं मुर्दा-सी हो गई किन्तु वालदा साहबा इत्यादि की भी यही दशा हुई। अतः दुर्भाग्य से यह संदेह सच निकला अर्थात् यह कि मित्र फिर मित्र है। प्रत्येक मित्र का कर्त्तव्य है कि ऐसे अवसर पर अपने मित्र दूल्हा को सूचित कर दे कि देखो भैया यह मामला है। अतः इस अवसर पर मित्र ने आवश्यकता से अधिक सोच-विचार किया। बताऊँ कि न बताऊँ? एक ओर एक अभागे कुल की मान-मर्यादा जाने का भय अर्थात् हम लोगों का, तथा दूसरी ओर अपने मित्र दूल्हा का खयाल। अतः इस असमंजस में पड़ कर दूल्हा के मित्र ने प्रस्तुत अवसर पर इस प्रकार मुक्ति प्राप्त की कि बारात से उठ

कर थाने पर ले जाकर मेरे दबे-दबाये मुक़दमे की मिसिल मेरे पति के सामने खोल कर रख दी, कि सच और झूठ काग़ज़ों में से तुम चुन लो। मामला यह है! और अब तुम जानो और तुम्हारा काम।

दूल्हा भी आखिर पुलीस का आदमी ठहरा। उसने स्त्री को तलब करके मामला पूछा। तथा यह कार्रवाई हो ही रही थी कि यहाँ से वर महाशय के चचा पहुँचे थाने में। आगबबूला बन कर कि वह अभागा कौन मित्र है जिसकी मित्रता ने यह दशा कर दी कि, बारात से दूल्हा ग़ायब।"

अब आप ही अनुमान लगा लीजिए कि मेरे भाग्यशाली पति की यह सब बातें मालूम करके क्या दशा हुई होगी। उधर से दूल्हा साहब के चचा ख़फ़ा होते हुए उनके पास पहुँचे तो उन्होंने उस स्त्री की ओर इशारा कर के मुक़दमें की मिसिल उनके आगे डाल दी, कि ख़फ़ा बाद में होइएगा पहले इस मिसिल के उल्लेखों की इस स्त्री से जाँच कर लीजिये और साथ ही खुद चलने से इन्कार कर दिया।

क़िस्सा बहुत लम्बा है। सारांश यह कि जब चचा भी वहीं के हो रहे तो दो-तीन और गये। इधर घर में यह विचित्र सूचना समस्या बन कर रह गई कि चचा गये, वह ग़ायब अतः अब सचमुच दशा शोचनीय मालूम दी किन्तु और लोग जो गये थे, वह भी वहीं के हो रहे। दो-तीन और गये और फिर फल यह निकला कि दूल्हा के चचा इत्यादि दौड़े हुए थाने से वापस आये और फिर जब उन्होंने अपनी स्त्रियों से बातें की हैं तो अल्लाह दे और बन्दा ले! यानी रहस्य का भंडाफोड़ हो गया!

घर-भर में यह खलबली मच गई कि यह क्या मामला है। एक से एक पूछ रही थी और यहाँ जैसे हम सब पर आकाश फट पड़ा।

मेरे तन-बदन से प्राण-पखेरू उड़ते मालूम हुये। ठंडक का सन्नाटा एक भयंकर तथा हृदय-विदारक गुदगुदी के साथ शरीर में तैरता मालूम हुआ। हाथ पाँव खिंचने लगे। गले में काँटा पड़ गया, आँखों तले झपकियाँ-सी आईं, तथा अँधेरा मालूम होने लगा। सर चकराया और कमरा जो घूमा तो मैंने ज़ोर से चारपाई पकड़ ली·····फिर मुझे खबर नहीं क्या हुआ ····· मैं ग़श की हाल में थी।

(५)

मुझ पर तो इधर ग़शी छाई हुई थी और उधर मामले ने भयंकर परिस्थिति धारण की। कुछ देर तक तो बारात वालियों में षडयन्त्र हुआ, बलवाइयों की भाँति सिमट कर एकत्र हो गईं और फिर उन्होंने अनुभव किया कि उनका भी तो कुछ कर्त्तव्य है। एक बड़ी बीबी उस गण-संस्था से बारात वालियों का सदस्या बनकर अम्मा जान को कोने में ले गईं और उनसे तोते का-सी आँखें निकाल कर कहा—"बहन, यह क्या मामला है? कुछ दाल में काला है। साफ़-साफ़ बताओ और नहीं तो मुझे वधू को दिखलाओ।"

अब अम्मा जान के अक़्ल व होश वैसे भी विदा हो चुके थे, अतः बजाय उन्होंने कुछ और कहने के, भूल तो देखिये, बड़ी बी को कुछ आड़े हाथों लिया और कह दिया कि वधू नहीं दिखलाई जा सकती। यह न समझीं कि सर्वप्रथम तो सच्ची घटना, उसके उपरान्त उसका प्रमाण सब कुछ हो चुका तथा अब स्वीकृति की कसर बाक़ी है।

जब बड़ी बी ने वधू न दिखाने का कारण पूछा तो क्या अच्छा उत्तर मिला, कह दिया वधू घर छुटने के शोक में बेहोश है। बड़ी बी बोलीं कि मैं बेहोशा हो में देख लूँगी तो इसका यह

उत्तर दिया कि कोई आवश्यकता नहीं। घर ले जाकर देखना। अतः इस वार्तालाप का जो फल हो सकता था, वही हुआ। उधर से इस बात पर ज़ोर दिया गया, तथा इधर से इन्कार किया गया। सारांश इस सुगमता से भंडा फूटा, और बात जो होनी थी, इस प्रकार से हुई।

फिर मज़े पर मज़ा देखिए कि भीतर तो इन्कार था तथा बाहर भी इस विषय को उठाया गया तो अत्यन्त निर्दोषपूर्ण ढंग से अज्ञानता तथा आश्चर्य प्रकट किया गया। और वह भी ऐसा कि अन्त में यह सारी बातें खामोशी में बदल गईं। या यों कहिए कि उन्हें स्वीकार कर लिया गया।

अब इस क़िस्से के उठने के बाद बारातियों के सामने भी एक उलझी हुई समस्या उपस्थित हो गई। जितने मुँह उतनी बातें। कुछ की इच्छा थी कि शीघ्र अब वापिस चल देना चाहिए। किसी की राय में ऐसा करना दूल्हा वालों की बदनामी का कारण न था तथा किसी की राय में दूल्हा वालों का अपमान हो चुका था। और मामला हाथ से निकल चुका था। सारांश यह कि उसने मुझे अपनाने से साफ़ इन्कार कर दिया और सच भी है, जीता मक्खी किससे निगली जाती है, कोई भी होता, वही करता जो मेरे पति ने किया।

शादी-विवाह का मामला था। क़ानूनदाँ और मौलवी सभी लोग जमा थे। मौलवी ने बताया कि निक़ाह ज्यों का त्यों है और यदि तलाक़ दो तो बीस हज़ार का मेहर (लग्न-धन) देना अनिवार्य होगा। और यह प्वाइंट ऐसा था कि इस मामले पर दूल्हा वालों को बजाय शीघ्रता से काम लेने के विचार करना पड़ा कि अब क्या करना चाहिए, अब भी मामला खास-खास व्यक्तियों तक ही सीमित था तथा बहुत शीघ्र परामर्श करके बारात

वाले एक निर्णय पर तो पहुँच गये और वह यह कि वधू को हम हरगिज न ले जायँगे। अब दूसरा विषय विचारणीय हो या न हो, सब बराबर था। कम से कम मेरे लिए। इसी बीच हमारे यहाँ वालों को निर्दोष अज्ञानता एक निःशब्द स्वीकृति में बदल कर उन असीमित मंज़िलों को तय कर के इस सीमा को पहुँची कि न मालूम इधर से वचन लिये भी गये थे अथवा नहीं, किन्तु उधर से अवश्य वचन दिये गये कि निःसंदेह उस मामले पर विचार करेंगे, मानो यह समस्या हल हो गई कि मुझे नहीं ले जायँगे।

सारे बाराती जैसे आये वैसे ही चले गये, और वही हुआ जिसके होने की आशा थी और जो होना चाहिये था।

(६)

यह सब कुछ बीत गया, अहो भाग्य कि मैंने बरातियों की वापसी का दृश्य नहीं देखा। मेरे ऊपर अचेतना का इतना भयंकर आक्रमण हुआ था कि दो घंटे की खबर लाई। हकीम साहब बुलाये गये। लखनखा सुँघाया गया, दवायें दी गईं जब जाकर होश आया। जब मुझे होश आया तो देखा कि मेहमानों की मायूदगी के उपरान्त भी एक विचित्र शोकाकुल नीरवता घर पर छाई हुई थी, कोई नहीं रो रहा था, और सब ही रो रही थीं, किन्तु कदाचित् बड़ा शान्तिपूर्वक तथा संताप के साथ अर्थात् चुपके-चुपके और शनैः-शनैः। मेरे सामने मौन खड़ी थी। मैं चुपचाप वधू-गृह में मूल्यवान वस्त्र धारण किए हुए इस भाँति पड़ा हुआ था कि मैं स्वयं अर्थी हूँ तथा यह सारे मेहमान विवाह-उत्सव में नहीं बल्कि शोक मनाने आये हैं। मेरे नेत्र खुले हुए थे किन्तु मैं स्वयं गतिहीन था। दुःख का भार कमर तोड़ चुका था। बस आंसुओं का झड़ा लगी था, जो किसी प्रकार थमने में न आती

थी और यह मालूम हो रहा था कि आँखों के ही रास्ते से बहुत चुपके-चुपके तथा शान्तिपूर्वक सारा रुधिर अश्रु बन कर बह जायगा। अतः मूर्छा दूर होने के बाद नवीन समाचार मेरे लिए यही था कि बारात वापस चली गई।

अब मैं कष्टों तथा दुःखों से इस भाँति कुचल कर रह गई थी कि आत्मा तक गतिहीन मालूम होती थी। मेरे लिए यह सोचना कि बाहर वालिद साहब इत्यादि की क्या दशा होगी? चाचा जी पर कैसी बीती होगी? सब व्यर्थ था बस फ़व्वारे की भाँति नेत्र से आँसुओं की धारा बह रही थी। हृदय एक सन्नाटे में आकर गले में चढ़ता मालूम होता था। तथा रोने का .....निःशब्द रुदन के दौरे पर दौरे ऐसे पड़ते थे कि रह-रह कर और उमड़-उमड़ कर रोने का ज़ोर होता था। तेज़ी बढ़ती जाती थी, ज़ोर बढ़ता जाता था तथा सीमान्त पर पहुँच कर मैं स्तब्ध हो जाती। रग-रग से प्राण खिंचते मालूम होते, थक कर चूर हो जाती, तन-बदन ठंडा पड़ जाता, एक हल्की सर्दी-सी अनुभव करती, हिचकियाँ बँध जातीं, दम घुट कर रह जाता, तथा सारा शरीर बेक़ाबू हो कर एक अर्ध-चेतना-सी छा जाती। और इसी बीच में यह होता था कि मैं फिर से रोने के लिए ताज़ा दम हो जाऊँ। तकिया और हाथ और रूमाल सब के सब तर-बतर थे। कटोरे के कटोरे और गिलास के गिलास आँसुओं के थे कि निकल चुके थे और निकल रहे थे।

घर में सिवाय रोने-धोने के और कुछ न रक्खा था, मगर बाहर कुछ और ही हो रहा था, चाचा जान जिनको मेरी निर्दोषिता का सबसे अधिक ज्ञान था, एकदम से तड़प कर उठे। बेधड़क और बेझिझक मेरी निर्दोषिता के बल पर वहाँ पहुँचे और इच्छा प्रकट की कि दूल्हा से अकेले में बातें करना

चाहते हैं। वहाँ लोगों ने रोक लगा दी कि मिलना तो हो सकता है किन्तु एकान्त में नहीं। लेकिन आग्रह करने पर यह निश्चय हुआ कि कोई आपत्ति नहीं, बातें कर लें।

अतः चचा साहब ने उनसे क्या बातें कीं ? कुछ पता नहीं, किन्तु वह भी असफल वापस आये साथ ही अत्युत्तम विचार लेकर आये। वे यह समझ बूझ कर आये थे कि उन लोगों को हम लोगों से कुछ कम दुःख नहीं पहुँचा है और वे लोग बदले के उत्सुक हैं। यहाँ तक कि क़स्में खाई हैं कि जब तक बदला न ले लेंगे, उन्हें संतोष न होगा, फिर यह कि हमारी ही मान-हान नहीं, वरन् उनकी भी हुई है।

वालदा साहबा ने जब चाचा जी के मुख से यह प्रशंसा सुनी तो वह बेचैन हो गईं। दहाड़ें मार कर रोने लगीं। जमाई के प्रति उनके सच्चे किन्तु टूटे हुए हृदय से कैसी-कैसी दुआयें न निकली हैं, यही मालूम होता था कि यदि यह दुआ क़बूल न हुई ता फिर कौन-सी दुआ क़बूल होगी। और फिर उन दुआओं के बाद जो उन्होंने विलम्ब-विलख कर उस अत्याचारी का कोसा है तो सुनने वालियाँ सिहर उठीं। उन्होंने हाँफ़-हाँफ़ कर और हिल-हिल कर कोसा कि "अल्लाह जिसने मेरे ऊपर यह ग़ज़ब ढाया, उसके ऊपर तू भी ग़ज़ब तोड़ियो..... जैसा उसने मुझे अपमानित तथा बदनाम किया। ख़ुदा, इससे अधिक तू उसे अपमानित कर..... .....इलाही जिस प्रकार मेरी पुत्री के निर्दोष यौवन का उसने सत्यानाश किया वैसे ही उसकी भी उठती जवानी पर बिजली गिरे।" .....इत्यादि-इत्यादि।

सारांश किस प्रकार उन्होंने विलख-विलख कर कोसा है कि शायद मज़लूमा की दुखिया माँ के अतिरिक्त अन्य कोई इस तरह कोस ही नहीं सकता ! मुझे स्वयं ऐसा प्रतीत हुआ कि यह दुआयें तथा बददुआयें खाली नहीं जायेंगी।

इन कोसनों को सुन कर मेरे हाथ में भी अस्त्र आ गया। तथा मैंने भी यही प्रार्थना की कि "ख़ुदाया! जिसने मेरा सर्वनाश किया कोई उसकी गृहणी को भी इसी प्रकार बेइज्ज़ती करे.....जिस प्रकार उस दुराचारी ने मेरी आबरू बर्बाद की है!"

मैं कोस रही थी, तथा दुःख के आवेश से रोष के धुएँ में सर पटक-पटक कर अपनी विवशता पर रोती और कलपती थी और वह कट-कट कर कोसती थी कि ख़ुदा ही ख़ूब जानता है। रह-रह कर मैं सोचती थी कि हाय अफ़सोस जिस समय दुराचारी चलने लगा है, चाक़ू तो सामने ही पड़ा था? आख़िर क्यों न मैंने झपट कर पीछे से भोंक दिया! अपनी सारी स्वाभाविक दुर्बलता की अपेक्षा मैंने अनुभव किया कि मैं उस निर्मम बध करने के लिए अकेली काफ़ी थी। तथा अब मेरी समझ में न आता था कि किस प्रकार उसने मुझे पराजित किया। मुझे चतुरता से काम लेकर उसका वहीं अन्त कर देना चाहिए था।

रह-रह कर मैं उस निर्दयी को कोसती तथा दांत पीस-पीस कर रह जाती, सर पटकती, बेबस होकर हाथों को काटती और उलझन में पट्टी पर मारती, अपना सिर धुनती, और फिर ख़ूब ख़ूब रोती। अतएव थक और हार कर रह जाती।

दिन समाप्त होने को आया, तथा एक-एक करके मेहमान शीघ्रतम् शीघ्र इस शोक-भवन की हैरानी तथा परेशानी से मुक्ति प्राप्त करके विदा हुए।

रात्रि आई किन्तु रात्रि के दस बजे तक हमारी ओर से बातचीत का सिलसिला जारी रहा, किन्तु दुर्भाग्य-वश परिणाम कुछ न निकला। बल्कि वैमनस्य बढ़ गया कुछ चुभते हुए वाक्य

उधर वालों ने कहे तो इधर वालों ने भी जले-कटे उत्तर दिए। फल यह कि गर्मा-गर्मी तक नौबत पहुँची और यह बात अब निश्चय थी कि बारात वाले कल शाम की गाड़ी से खाली-खूली जैसे आये थे, वापस जा रहे हैं।

यह था वह निर्णय जो भाग्य ने मेरे लिए सुरक्षित रक्खा था। रात्रि अपना पूर्ण अंधकार लेकर आई, और हमारे घर अर्थात् शोक-भवन पर कालिमा तथा अंधकार का भयंकर पर्दा डाल गई। यह भयानक तथा विचित्र रात्रि मुझे आजीवन स्मरण रहेगी। रात्रि बीते तक मैं रोती रही, पिछले पहर अर्थात् बारह बजे के बाद मैं सो गई और मैंने एक अत्यन्त भयावना, अत्यन्त भयंकर तथा हृदय-विदारक और विचित्र स्वप्न देखा।

तृतीय भाग

बारहवाँ परिच्छेद

वैम्पायर

(१)

"·····क्या देखती हूँ कि सारे घर में एक रोशनी फैली हुई है या कि नूर की चाँदनी ने खेत किया है। सुगन्ध से नहीं, बरन् प्रेम की देवियों की ऊष्ण तथा मधुर स्वाँसों से मेरा वधू-गृह सुगन्धित हो रहा है··· ·····एक निरन्तर शोर की प्रतिध्वनि कानों में गूँज रही है ····· ···या बारात की गड़बड़ !·····मैं बेचैनी से किसी की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

गुप्त रूप से आने-जाने वालियों तथा मेहमानों की चहल-पहल !·····उनके भड़कीले कपड़ों की सरसराहट····· मानो बीबियाँ अंधकार की मनहूस परछाईं को भाँति इधर से उधर आ जा रही हैं !·····मेरी गर्दन झुकी हुई है। कपड़ों में अच्छी तरह लिपटी हुई दुलहिन बनी बैठी हूँ। सिवा मेरे हृदय की धड़कन के कदाचित् सारी सृष्टि एक नीरवता तथा निःस्तब्धता में डूबी हुई है !····· किन्तु इस निःस्तब्धता तथा नीरवता की लहरों में बाहर के बारातियों की चहल-पहल से

उभार-भाँटा-सा पैदा हो रहा है !.....सारांश बरात तथा विवाह की धमाधमी और गुल-गपाड़े की एक 'शान्त-कल्पना' मेरे सामने है और मैं हूँ।

अकस्मात् इस नीरवता में एक कम्पन का-सा आभास हुआ। ....दरवाजा बहुत धीमे स्वर में अपनी चूल पर चक्कर करता है.....एक इतर का भपका-सा आता है..... ...ताजे तथा विकसित फूलों की सुगन्ध ! मुझे मालूम है कौन आया..... मेरा हृदय एक विचित्र अवर्णनीय प्रसन्नता के कारण घबरा जाता है ! इसके पश्चात् ही मैं अपनी बाईं भुजा पर हाथ के दबाव का अनुभव करती हूँ, किसी ने मुझे खड़ा किया, मैं साथ चली !.....मैं वस्त्रों में लिपटी हुई हूँ, तथा कुछ देख नहीं सकती, किन्तु स्वप्न में तो मानो खुद को अपने पति के साथ विदा होते स्वयं ही देख रही हूँ। मेरे पग बड़ी कठिनता से उठ रहे हैं।

अभी कमरे से बाहर भी नहीं पहुँचे कि मेरे शरीर को हल्का झटका-सा लगता है और मैं देखती हूँ कि उछलकर मेरे पति मुझसे अलग हो गये और कहा—"हैं ! यह धोका !" और इसके पूर्व कि मैं कुछ कह सकूँ, मैं देखती हूँ कि मुझे छोड़कर चल दिये। मैं देख रही हूँ कि वह विवाह के स्वर्ण-वस्त्र धारण किये हैं, किन्तु मेरी ओर उनकी पीठ है। बनारसी अचकन जो हमारे यहाँ से बनकर गई थी, उसके बड़े-बड़े सुनहरे फूल धूप-छाँह में चमक रहे हैं। जिसकी तेजी मेरी आँखों में घुसी जा रही है।

इस प्रकार जाता देख कर शीघ्र ही मैं बेचैन होकर दौड़ती हूँ। कमरे से निकल कर नमालूम किस प्रकार और कहाँ पहुँची। वह आगे तथा मैं पीछे। लाज के मारे पुकारना

असंभव है, अतः बड़ी तत्परता से पीछा करती मैं चली जा रही हूँ..... ...नमालूम किधर और कहाँ चली जा रही हूँ। बल्कि पहुँच गई!

एक सुनसान मैदान है! चारों ओर नीरवता छाई है। जंगल बियाबान, निर्जन कानन है.....मनुष्य न मनुष्य का चिन्ह.....इस मैदान में एक कल्पित तथा हल्का-सा बवंडर उठ खड़ा हुआ... .....एक धुआँ-सा क्षितिज में तैर रहा है! बल्कि ऐसा मालूम हुआ कि यह धुआँ या बवंडर नहीं, वरन् समस्त सृष्टि दुःख की चादर ओढ़े है.....दुखित एवं संकट-पूर्ण आत्माओं से परिपूर्ण है!.....चारों ओर एक शांत उदासीनता-सी बरस रही है!.....भय-सा छाया हुआ है .....एक भयंकरता-सी परिलक्षित हो रही है!.....मेरा हृदय इस दृश्य को देख कर सिहर उठा, तथा मैंने अनुभव किया कि इस बीच में भी निरंतर मैं अपने पति का पीछा कर रही थी, तथा अब देख रही थी कि उनकी गति में अन्तर पड़ गया .....मैंने क़दम बढ़ाये और समीप पहुँची.....और निकट..... ...और निकट पहुँची। यहाँ तक कि रेशमी अचकन के फूल मुझे दृष्टिगोचर होने लगे .....मैं और निकट पहुँची, तथा एक अवर्णनीय आकर्षण मुझे उस ओर खींच रहा था।

मैं निकट पहुँच ही गई थी और मैंने देखा कि वह एकदम से रुके और रुककर मेरी ओर मुड़ कर देखा।

मेरे मुँह से एक दबी हुई चीख निकल गई! मारे भय तथा कम्पन के वहीं की वहीं ठिठक कर रह गई। क्योंकि पति नहीं, यह तो एक भयानक और खौफनाक बला थी, जिसे देखते ही मारे भय तथा निराशा के मेरा खून जम गया। मैं खड़ी की खड़ी रह गई तथा मैंने देखा कि मेरे सामने एक बहुत ही भयानक, तथा अत्यन्त खौफनाक और अति कुरूप मनुष्य..... ...नहीं, वरन्

दैत्य खड़ा था! काला चमकता हुआ चेहरा!.....उसके पीले-पीले नेत्र, बहुत ही बड़ा और अत्यन्त घृणित चेहरा था, जिस पर एक भयंकर तथा विषैली किन्तु साथ ही हास्य-पूर्ण मुस्कान थी, मेरा समस्त शरीर काँप उठा।

इतना गन्दा तथा भयावना और उदासीन तथा घृणित और कुरूप चेहरा, न मैंने कभी देखा था, और न खुदा कभी दिखलाये। नीचता और गन्दगी चेहरे से किस प्रकार स्पष्ट थी! मुझे देख कर इस भयावने चेहरे पर एक मुस्कान आई..... चेहरा और भी पाशविक तथा कुरूप हो गया!.....मुस्कान ने बदल कर अट्टहास का रूप धारण किया तथा मैंने देखा कि मैले-मैले और अत्यन्त गन्दे दाँत और मसूड़े हैं कि जी मतला जाय, फिर साथ ही दुर्गंध मिश्रित और गंदी साँस का भपका-सा मुझ तक पहुँचा।

मारे भय तथा घृणा के मैं दो क़दम पीछे हटी, मैंने अनुभव किया जैसे भय को घृणा ने पराजित किया। साथ ही मैंने देखा, उधर उस अपवित्र आभाहीन मुख पर एक अत्यन्त नीचता-पूर्ण कम्पन दृष्टिगोचर हुआ। मोटे-मोटे होंठ जो मुँह की गंदगी में सने हुए थे, हिले.....हँसी नहीं थी यह! वरन् एक फुँकार थी और साथ ही मेरी ओर एक लम्बा तथा कुरूप हाथ बढ़ा!.....हाथ? नहीं बल्कि एक कुरूप पञ्जा था..... मैल.....गन्दगी तथा अपवित्रता से परिपूर्ण.....बड़े-बड़े नाखून थे तथा पंजे की बनावट मुर्गी के पैरों की-सी थी .....मैं और पीछे हटी तो इस बला ने मेरी ओर से मुँह मोड़ लिया और आगे बढ़ी, मैं खड़ी की खड़ी रह गई।

उस बला ने दो क़दम जो चल कर फिर मुझे मुड़ कर देखा तो आश्चर्य के मारे मेरे मुँह से फिर चीख निकली होती, क्योंकि

बजाय उस भयावने चेहरे के मैंने देखा कि यह वही निर्दयी है जिसने मेरी मिट्टी खराब की थी ! किन्तु उसने मुँह मोड़ लिया।

मैं कुछ सोचने भी न पाई थी कि फिर उसने मुड़ कर देखा तथा अब मैंने देखा कि यह वही बला है ! सारांश मैं खड़ी हुई थी और यह जाने वाली बला मुझे मुड़-मुड़ कर देखती जाती थी। एक बार उस निर्दयी का चेहरा हो जाता था तथा दूसरी बार देखो तो वही बला !...... ...बारी-बारी से दोनों के दोनों घृणा-योग्य चेहरे मुझे मुड़-मुड़ कर देखते थे !.........अधिक तेज़ी से मुड़ कर देखना आरम्भ किया !.........और तेज़ी से ! ....और भी तेज़ी से ! अन्त में ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई मशीन काम कर रही है। दोनों चेहरे बारी-बारी से दिखाई दे रहे हैं !

क्षण-मात्र में.........देखते ही देखते, दोनों चेहरे इतनी फ़ुर्ती से, बारी-बारी से मुड़ कर मुझे देखने लगे, कि मैंने अनुभव किया कि जैसे एक 'रेल' पर दोनों चेहरे चढ़ा दिए गये हैं और मेरी आँखों में दौड़ रहे हैं !... ...चलायमान् !......... कम्पित !.........सिहरनमय !.........दोनों अप्रिय चेहरे मेरी आँखों में अत्यन्त तीव्रता से बारी-बारी झपकियाँ-सी देते हुए चले जा रहे थे !... ... ...दूर हो गये...... ...और दूर पहुँचे ... ...किन्तु इसी प्रकार कम्पित तथा सिहरन से परिपूर्ण !... ... अर्थात् बारी-बारी से तीव्रता से झपकियाँ-सी देते हुए बहुत दूर पहुँच गये ... ...और दूर... ... ...और भी दूर...... बहुत ही दूर.........फिर इतने सुदूर पहुँचे कि उनके निरन्तर कम्पन की केवल झलक-मात्र आँखों में रह गई तथा वास्तविक रूप नेत्रों से अदृश्य हो गया।...... ...किन्तु दोनों चेहरों की स्मृति अब भी उनके कम्पन की झलक के साथ-साथ आँखों के सामने थी।

तत्पश्चात् यह एक झलक-सी कम्पित काले पट्टे के समान मालूम दी जो चाँदमारी को 'फुलझड़ी' की भाँति क्षितिज पर अब भी वही दोनों आकृतियाँ प्रदर्शित करता प्रतीत हो रहा था। देखते-देखते वह कालिमा का चिन्ह-सा होकर रह गया और फिर ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे रुक गया !.....कुछ जम-सा गया..... ...तथा फिर ऐसा प्रतीत हुआ कि इस चिन्ह की कालिमा तेज़ पड़ गई .....तेज़ हुई !.....और तेज़ हुई !.....और भी तेज़ हो गई .....यहाँ तक कि तीव्रतम होकर यह चिन्ह एक काला और अप्रियकर तारे की भाँति क्षितिज के निर्मल तथा स्वच्छ आकाश को अपने पृष्ठ पर लिए हुए इस प्रकार चमका कि मालूम हुआ जैसे मुझे घूर रहा है।

मैंने और भी ध्यान से देखा, उसकी कालिमा और भी तेज़ मालूम हुई, यहाँ तक कि मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह अप्रियकर और काली आँख मुझे सचमुच घूर रही है !

(२)

मैं टकटकी बाँधे इस अप्रियकर तथा काले तारे को देख रही थी और वह मेरी आँखों में घुसा जा रहा था। मैंने देखा कि धीरे-धीरे और चुपके-चुपके यह अशुभ तारा आकाश पर उदय हो रहा है !.....एक निश्चित और अप्रियकर किन्तु दुखदाई गति से उसने उदय होना आरम्भ किया। उसकी कालिमा में वृद्धि होती जा रही थी। क़द में शनैः-शनैः अन्तर हो रहा था तथा धीरे-धीरे सर्प की भाँति आकाश के दीप्तिमान् क्षितिज में तैरता हुआ चला आ रहा था।.....मेरे देखते-देखते आकृति और बढ़ गई। अन्त में ऐसा प्रतीत हुआ कि पूर्णमासी का एक काला और भयानक चन्द्रमा है जो चढ़ता चला आ रहा है। अन्त में मेरे देखते-देखते वह एक सम्पूर्ण काले

तथा भयानक कलाधर की भाँति अपनी भयंकर तथा अशुभ कालिमा लिए मेरे सामने उदय होकर रह गया।

इसकी कालिमा से अँधेरी ज्योति-सी निकलती मालूम दी और ऐसा ज्ञात हुआ मानो कालिमा सम्पूर्ण रूप से चन्द्र-ज्योत्सना की भाँति छिटकी है। एक महान् अशुभ परछाईं-सी चारों ओर उतर रही थी! और अवर्णनीय शांत कालिमा से सम्पूर्ण क्षितिज परिपूर्ण मालूम हो रहा था! मनहूसियत सचमुच बरसते अपनी आँखों से देख रही थी! मैं इस विचित्र तथा हृदय-विदारक दृश्य को देख रही थी कि यह कालिमा तथा अन्धकार का चिन्तु कम्पित हुआ! .....सिहर कर करवट ली, तथा बारूद का-सा एक धमाका हुआ कि देखने में तो अवश्य आया किन्तु था निःशब्द। तथा एक कालिमा की चिंगारी कहिए कि इस अँधेरे चाँद में से एक तड़प के साथ निकली! .....ऐसा कि मालूम हुआ कि आँखों में अंधकार का एक भाला-सा लगा। .....कालिमा की चमक तथा तीव्रता से आँखें झपक गईं और कालिमा की चिनगारी के साथ कुछ रुधिर-मिश्रित एक धुआँ देती हुई गेंद की भाँति कोई वस्तु गोले के रूप में निकली और ठीक मेरे सिर पर से होती हुई। .....एक कालिमा को गहरी-सी लकीर छोड़ती हुई सीधी इतनी दूर चली गई कि मैंने मुड़ कर जो देखा तो मालूम हुआ कि बस चली जा रही है..... अन्त में पृथ्वी पर गिरती हुई मालूम दी और आँखों से ओझल हो गई। और अब मेरे सिर पर एक अत्यन्त काली तथा गहरी रेखा थी, जो क्षण-प्रतिक्षण घुलती जा रही थी। और इसी को मैं ध्यानपूर्वक देख रही थी।

मैं इस रेखा को ध्यानपूर्वक देख रही थी जो फुर्ती के साथ घुल रही थी कि मेरे पीछे की ओर से, दूर से एक वेदनात्मक

हो नहीं, वरन् सम्पूर्ण वेदना, अत्यन्त हृदय-विदारक, [कराहने का सा शब्द हुआ जो आरी की भाँति मेरे हृदय को चीरता चला गया।.....मेरे रोंगटे खड़े हो गये।.....“आ-आ-आ-आ.....आ.....हा।” यह कराहने का एक हृदय-विदारक तथा दुखप्रद शब्द था जो इतना भयावह, और कल्पनात्मक था कि ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे किसी दुखिया स्त्री को कोई अत्याचारी सचमुच महान कष्ट दे रहा है।

फिर वही दर्द में भीगा तथा कम्पित और कम्पायमान शब्द हुआ।.....“आ-आ-आ-आ.....आ-आ-आ.....हा।” और फिर मेरे बदन में एक सनसनी-सी दौड़ गई। मारे भय के रगों में कोई वस्तु रेंगती मालूम हुई, तथा हृदय सिहर उठा। स्वर तथा शब्द से स्पष्ट मालूम हो गया कि निःसन्देह यह किसी दुखिया तथा द्रवित स्त्री की हृदय-विदारक आवाज है। अत्यन्त उदासीन, बहुत ही दुःखप्रद तथा अति दयनीय स्वर था तथा फिर आवाज आई “आ-आ-आ-आ.....आ.....हा।” तथा इस बार ऐसा मालूम हुआ कि किसी ने सचमुच दर्द के परदे को छेड़ दिया है..... कि आवाज कानों को नहीं बल्कि वास्तव में दिल व जान को भेदती चली जा रही है। एक दर्द का तकना था कि भेदता हुआ हृदय को निकल गया। इस बार यह हृदय-विदारक शब्द-ध्वनि दुःख के स्वरों में कुछ इस प्रकार डूबा हुई तथा एक मर्मात्मक मधुरता से परिपूर्ण थी कि ऐसा प्रतीत हुआ मानो शोक व सन्ताप तथा दुःख व दर्द को तार-तार करके क्षितिज में छोड़ गई है। और फिर स्पष्ट मालूम होता था कि हर बार शब्द-ध्वनि नजदीक होती जा रही है।

मैं आवाजों को गिन रही थी और ग्यारहवीं या बारहवीं आवाज न केवल दर्दात्मक तथा हृदय-विदारक थी बल्कि ऐसा

प्रतीत हुआ कि एक अनवरत तथा भयंकर रोग है जिसने संपूर्ण वातावरण को उदासीन तथा दु:खद संगीत से परिपूर्ण कर दिया है। तथा इन संगीतों की प्रतिध्वनि के चढ़ाव-उतार से समस्त वातावरण एक शोकातुर तथा हृदय-विदारक तूफ़ान में हैं और फिर यह आवाज़ इतनी निकट थी कि मैं वास्तव में उछल पड़ी। अत: अब बहुत ध्यान-पूर्वक मैंने अपनी आँखों को मल कर इस काले निशपति के अँधेरे और अप्रिय 'प्रकाश' में उस ओर देखा कि इतने ही में फिर शब्द-ध्वनि हुई।..... .....उसके साथ ही कुछ दूर पर कोई हिलती हुई वस्तु दृष्टिगोचर हुई। मैंने और भी ध्यान से और आँखें फाड़ कर फिर देखा, अब मुझे विश्वास हो गया कि कोई स्त्री है, जो अत्यन्त दु:ख और कष्ट तथा व्यग्रता की दशा में मृत्युप्राय है। एक और शब्द हुआ और मैं उसी ओर बढ़ी।

(३)

मैं ध्यानपूर्वक देख रही थी।

धीमे-धीमे, काले और मनहूस प्रकाश को चीर कर पहुँची तथा मैंने देखा कि कुछ चलायमान कम्पन-सा है। मैं फ़ुर्ती से काफ़ी निकट पहुँची तथा अब मैंने देखा।.....हे मेरे भगवान्! .....मैंने जो कुछ देखा न तो वह लेखनी में आ सकता है और न उसका वर्णन ही किया जा सकता है, कि मैंने क्या देखा। मैंने अत्यन्त भय तथा आश्चर्य से मूर्छित होकर देखा कि एक सर्वांग सुन्दरी है, तथा उसके बायें ओर गले में एक हिंसक व्यक्ति जोंक की भाँति चिमटा हुआ है..... ...आदमी है कि बला।.....अपने हिंसक जबड़ों से उसको गर्दन दबाये .....दाँत दबाये हुए रक्त चूस रहा है। तथा रुधिर बह-बह कर उसके भयंकर तथा घृणित जबड़ों और दाँतों को रक्त-मय

करता हुआ नीचे आ रहा है, तथा इस रक्तिम बला के स्वाँसों से बहते हुए खून में सरसराहट-सी हो रही थी। जब वह अपना भयंकर मुँह फैला कर तथा अपने खूनी दाँतों से गर्दन चबा कर खून पीने के लिए चुस्की लगाता है तो यह सुंदर लड़की दर्द के कारण विकल होकर एक 'हाय' अथवा 'आह' की हृदय-विदारक आवाज लगाती है जो इस निर्जन बन में चारों ओर एक दर्दात्मक नीरवता के साथ अन्धकार में लीन होती जाती है तथा क्षितिज में अपनी प्रतिध्वनि की उदासीन शब्द-ध्वनियाँ छोड़ती हुई लुप्त हो जाती हैं, किन्तु यह रक्त-पिपासिनी बला कौन थी ? वही कुरूप बला जो आकृति में परिवर्त्तन करती बल खाती, मुझे इस मैदान में तमाशा दिखलाती आँख से ओझल हो गई थी।

मेरे देखते-देखते उस सुंदरी ने वेदना की असहनीय पीड़ा से उसी भाँति आँखें बन्द किये हुए मछली की भाँति विकल होकर एक करवट ली। उसकी मुखाकृति घोर वेदना के कारण श्वेत हो गई थी। ललाट पर कष्टों के कारण बल पड़ गये किन्तु इस रक्त-पिपासिनी बला ने अपने बलिष्ठ जबड़ों से उसे पकड़ कर झँझोड़ डाला और सिर ऊँचा करके क़ाबू में जो करना चाहा, तो उस हतभागिनी की कोमल तथा सुन्दर गर्दन की चमड़ी तक उधड़ गई तथा इस रक्त-पिपासिनी बला ने एक हल्की-सी गुर्राहट के साथ उसकी सुंदर तथा कोमल गर्दन को झंझोड़ डाला और अपना पकड़ मजबूत करके इस ज़ोर से चुसकी ली कि गर्दन के घाव से रुधिर उबल कर सर्राटे भरता घूँट के घूँट इस रक्त-पिपासिनी के होठों तथा दाँतों पर से बहता हुआ उसके कण्ठ में पहुँचा तथा इसके साथ ही मैं एक और वास्तविकता को देख कर एकदम से चौंक पड़ी।.....क्योंकि यह सच्ची घटना थी कि एक चेहरा तो खून पीने में तल्लीन था

तथा उसकी गुद्दी पर सर्प के से बालों से आच्छादित एक औ भी मुखड़ा था और यह मुखड़ा उसी निर्दयी का था, जिसने मेरी मिट्टी पलीद की थी।.....किस प्रकार अब यह घृणा के योग्य तथा अप्रियकर चेहरा अपनी चमकती हुई आँखों से मेरी ओर देख रहा था !!

घृणा ! एक महान घृणा ! मेरे हृदय में भय की उपेक्षा मौजूद थी। दो चेहरे थे और मेरे लिए दोनों ही एक समान घृणा के योग्य थे।

"हे मेरे ईश्वर ! क्या दुखियों की कोई सुनवाई नहीं, ये शब्द बड़ी कठिनाई से निकले थे कि मेरी आँखें किसी महान् प्रकाश की चकाचौंध पैदा कर देने वाली रोशनी की लपक से चौंधिया गईं और साथ ही आकाश पर वज्रपात-सा हुआ..... मैंने सिर उठा कर देखा है।..... ...वही बनारसी अचकन जो हमारे यहाँ से तैयार होकर वर अर्थात् मेरे पति के जोड़े के लिए गई थी .....वही शेरवानी पहने दीप्तिमान् क्षितिज में किसी को मैंने देखा। चेहरा देखने के लिए मैं विकल हो गई। किन्तु वह प्रथम तो सेहरे के फूलों में छिपा हुआ था और फिर मुख दूसरी ओर था, यह कौन था ? यह पूछना व्यर्थ है। एक प्रकाश के बादल पर मैंने उन्हें सँभलते देखा। दीप्तिमान् धुआँ चक्कर काटता हुआ उनके गिर्द घूम रहा था..... ....तीर व कमान उनके हाथ मे थी तथा मैंने देखा कि उस काले चन्द्रमा की ओर कमान में तीर जोड़ कर उन्होंने सर कर दिया।

(४)

मृत्यु-दूत !.....तीर एक ज्वाला की भाँति सनसनाता हुआ साधा उस काले चन्द्रमा के बीचोबीच में, गोया अन्धकार के मध्य में, एक ख़ूनी झपट के साथ तराज़ हो गया।.....

गोया बारूद के ढेर में दहकता हुआ रक्त-बिन्दु पड़ गया और वह भक से उड़ गया। एक निःशब्द धमाका-सा हुआ। प्रकाश का एक खड्ग अन्धकार को काटता चला गया। दीप्तमान क्षितिज से एक संसार प्रकाशमान होकर रह गया और तब मैंने देखा कि एक ज्योतिर्मय मेघ का टुकड़ा या प्रवाहित जल की चादर-सी आकाश से नाचती हुई मेरे बिलकुल ही निकट आकर उतरी। मैं देखते ही आश्चर्य-चकित होकर रह गई। स्वच्छ तथा निर्मल जल की लहरों पर किरणें काँपती हैं अथवा श्वेत मखमल को धूप चाटती है। यह दशा इस प्रवाहित जल के रेशमी पर्दे की थी, क्योंकि उसके भीतर सचमुच मुस्कान की बिजुलियाँ बन्द थीं।

मैं उसके बिलकुल ही निकट पहुँची, तथा मैंने पर्दे का छोर जो उठाया तो क्या देखती हूँ कि बनारसी अचकन पहने तथा फूलों के सेहरे से मुँह छिपाये हुए वही धनुषधारी है।

"मैं तेरा कष्ट निवारण करूँगा।" फूलों में से आवाज आई और मैंने प्रसन्नता-पूर्वक घबरा कर मुखाकृति को ध्यान-पूर्वक जो आगे झुक कर देखा तो बजाय इसके कि कुछ स्पष्ट दिखाई देता, कुछ धुँधला-सा भभका-सा उठ कर रह गया। मैंने और सर झुका कर बड़े ध्यान से जो देखा तो बजाय किसी और वस्तु के स्वयं अपनी सूरत दिखाई दी। अति सुन्दर बहुत ही

[illegible]

न वह जादूगृह था! न वह मैदान और न वह धनुषधारी और न प्रवाहित जल का वह पर्दा! मैं थी और मेरा कमरा! तथा मेज के पास खड़ी अपने बड़े आइने में स्वयं अपनी सूरत को देख रही थी!............शीशे का बड़ा नुकसान

आवश्यकता से अधिक आइने में सिर अड़ाने से कोहनी लग जाने से फ़र्श पर तड़ाके के साथ गिरा था !

मैंने अपनी मुस्कराती और हँसती हुई सूरत को आइने में होश में आते ही देखा तथा वास्तविक घटना मालूम करके मेरे मुँह से एक चीख निकली, मैंने अपना सिर पीट लिया ! सारांश आँख खुली तो कुछ न था। हाँ सवेरा था।

❀ ❀ ❀

सुबह थी.....मैं थी तथा वही शोक-भवन, हमारा घर ! नवीन प्रभात कदाचित् वही कल वाली शोकातुर परेशानियाँ तथा हैरानियाँ पुनः नवीन रूप से दोहराने आया था ! आह ! वही मैं थी, और मुझे छोड़ जाने वाला बारात की दुःखप्रद कहानी !.....क्योंकि बाराती इत्यादि मुझे ले जाने से इन्कार कर ही चुके थे और आज जाने वाले थे।

यह था वह विचित्र तथा दुःखदायी स्वप्न, जिसने मेरे कष्टों में और भी वृद्धि कर दी थी ! रह-रह कर मैं स्वप्न के भयंकर तथा विचित्र अंशों पर विचार करती थी और नाना प्रकार से उसके मन ही मन में फल निकालती थी। "मैं तेरा कष्ट निवारण करूँगा।" यह वाक्य कितना आशाप्रद था, क्या वास्तव में मुझे क्षमा न कर देंगे ? निःसन्देह यह स्वप्न सच्चा है तथा इसका यही फल है, अवश्य-अवश्य मुझे क्षमा कर देंगे तथा मुझे साथ विदा करा ले जायँगे। अतः कभी तो यह विचार मन को गुदगुदाता और कभी वास्तविकता अपनी सारी घटित नग्नता के साथ एक अट्टहास लगाती और कहती कि तेरे स्वप्न का फल यह है कि तू बदनामी का पोट है और तुझे कोई नहीं क्षमा करेगा। और न कोई ले जायगा। स्वप्निल शब्द "मैं तेरा कष्ट निवारण करूँगा।" हृदय में जम कर रह जाते

नि:सन्देह मेरी कठिनाई दूर हो जायगी, अत: अम्मा जान को एक सरतोड़ चेष्टा तो कम से कम और करनी ही चाहिए। हमारे यहाँ से लोगों को आज वहाँ जाकर अन्तिम चेष्टा करनी चाहिए। अवश्य-अवश्य वह विचार करेंगे कि मेरा कोई दोष नहीं और नेयमानुसार जब मैं अब भी विवाहिता स्त्री हूँ तो मेरा अपमान स्वयं उनका अपमान है। मेरी इज्जत उनकी इज्जत है और उन्हें अवश्य अपनी मान-रक्षा करनी चाहिए तथा मुझे ले जाना चाहिए। अत: मैं सोच रही थी कि अम्मा जान से कहूँ किन्तु उनको मुझसे पहले ही इस बात का ध्यान था। अत: उन्होंने बचा जान से कहा कि वह यह कह कर उन्हें बुला लाय कि दो मिनट तुमसे बात करने को स्वयं तुम्हारी सास बुलाती है।

मैं प्रसन्न थी कि अवश्य मेरा स्वप्न सच्चा है, तथा उनका फल यही निकलेगा कि वह मुझे क्षमा कर देंगे। किन्तु भाग्य तो देखिए कि नाना प्रकार से चेष्टा की गई। किन्तु वहाँ दया का नाम नहीं और स्वप्न का फल ही उल्टा निकला।

तेरहवाँ परिच्छेद

विपरीति परिणाम

(१)

बचा जान दूल्हा वालों के यहाँ पहुँचे और उन्हें बाल्दा साहबा का संदेसा पहुँचाया। उसका उत्तर उन्होंने यह दिया कि जब हम निश्चय ही कर चुके हैं कि वधू को नहीं ले जायँगे तो ऐसी परिस्थिति में जाने और बातचीत करने से कोई लाभ न होगा। गये थे दूल्हा साहब से बातें करने और वहाँ अन्ध

आवश्यकता से अधिक आइने में सिर अड़ाने से कोहनी लग जाने से फ़र्श पर तड़ाके के साथ गिरा था !

मैंने अपनी मुस्कराती और हँसती हुई सूरत को आइने में होश में आते ही देखा तथा वास्तविक घटना मालूम करके मेरे मुँह से एक चीख निकली, मैंने अपना सिर पीट लिया ! सारांश आँख खुली तो कुछ न था। हाँ सबेरा था।

❀ ❀ ❀

सुबह थी.....मैं थी तथा वही शोक-भवन, हमारा घर ! नवीन प्रभात कदाचित् वही कल वाली शोकातुर परेशानियाँ तथा हैरानियाँ पुनः नवीन रूप से दोहराने आया था ! आह ! वही मैं थी, और मुझे छोड़ जाने वाला बारात की दुःखप्रद कहानी !.....क्योंकि बारातों इत्यादि मुझे ले जाने से इन्कार कर ही चुके थे और आज जाने वाले थे।

यह था वह विचित्र तथा दुःखदायी स्वप्न, जिसने मेरे कष्टों में और भी वृद्धि कर दी थी ! रह-रह कर मैं स्वप्न के भयंकर तथा विचित्र अंशों पर विचार करती थी और नाना प्रकार से उसके मन ही मन में फल निकालती थी। "मैं तेरा कष्ट निवारण करूँगा।" यह वाक्य कितना आशाप्रद था, क्या वास्तव में मुझे क्षमा न कर देंगे ? निःसन्देह यह स्वप्न सच्चा है तथा इसका यही फल है, अवश्य-अवश्य मुझे क्षमा कर देंगे तथा मुझे साथ विदा करा ले जायँगे। अतः कभी तो यह विचार मन को गुदगुदाता और कभी वास्तविकता अपनी सारी घटित नग्नता के साथ एक अट्टहास लगाती और कहती कि तेरे स्वप्न का फल यह है कि तू बदनामी का पोट है और तुझे कोई नहीं क्षमा करेगा। और न कोई ले जायगा। स्वप्निल शब्द "मैं तेरा कष्ट निवारण करूँगा।" हृदय में जम कर रह जाते

निःसन्देह मेरी कठिनाई दूर हो जायगी, अतः अम्मा जान को एक सरतोड़ चेष्टा तो कम से कम और करनी ही चाहिए। हमारे यहाँ से लोगों को आज वहाँ जाकर अन्तिम चेष्टा करनी चाहिए। अवश्य-अवश्य वह विचार करेंगे कि मेरा कोई दोष नहीं और नियमानुसार जब मैं अब भी विवाहिता स्त्री हूँ तो मेरा अपमान स्वयं उनका अपमान है। मेरी इज्जत उनकी इज्जत है और उन्हें अवश्य अपनी मान-रक्षा करनी चाहिए तथा मुझे ले जाना चाहिए। अतः मैं सोच रही थी कि अम्मा जान से कहूँ किन्तु उनको मुझसे पहले ही इस बात का ध्यान था। अतः उन्होंने चचा जान से कहा कि वह यह कह कर उन्हें बुला लाय कि दो मिनट तुमस बात करने का स्वयं तुम्हारी सास बुलाती है।

मैं प्रसन्न थी कि अवश्य मेरा स्वप्न सच्चा है, तथा उसका फल यही निकलेगा कि वह मुझे क्षमा कर देंगे। किन्तु भाग्य तो देखिए कि नाना प्रकार से चेष्टा की गई। किन्तु वहाँ दया का नाम नहीं और स्वप्न का फल ही उल्टा निकला।

तेरहवाँ परिच्छेद

विपरीति परिणाम

(१)

चचा जान दूल्हा वालों के यहाँ पहुँचे और उन्हें बाल्दा साहबा का संदेसा पहुँचाया। उसका उत्तर उन्होंने यह दिया कि जब हम निश्चय ही कर चुके हैं कि बधू को नहीं ले जायँगे तो ऐसी परिस्थिति में जाने और बातचीत करने से कोई लाभ न होगा। गये थे दूल्हा साहब से बातें करने और वहाँ अन्य

लोगों ने बीच में पड़ कर बात तक न करने दी। यथाशक्ति चेष्टा करके चले आये।

उनका दृष्टिकोण बड़ा विचित्र था। वह यह कि मैं अब अपने घर वालों की कोई नहीं हूँ जबकि मेरा कब का निकाह हो चुका। उन्होंने वहाँ जाकर अपने लक्ष्य को इस भाँति समझाया कि हमारी लड़की या भतीजी के साथ अत्याचार नहीं हुआ है। वरन् तुम लोगों के यहाँ की एक स्त्री के साथ हुआ है, उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि हम लोगों की इसमें कोई बे-इज्ज़ती ही नहीं, यदि कुछ है तो तुम लोगों की। और हम कुछ नहीं जानते। लड़की ले जाओ और तुम जानो और तुम्हारा काम।

इन तमाम बातों को उन लोगों ने स्वीकार किया। बल्कि पानदान खर्च वग़ैरह की ज़िम्मेवारी से भी इन्कार नहीं किया, किंतु साथ ही स्पष्टतः इन्कार भी कर दिया कि लड़की हमारे योग्य नहीं। फिर स्वयं दूल्हा का साफ़ जवाब था कि चाहे कुछ हो जाय मैं दुल्हिन को नहीं ले जा सकता।

इस चेष्टा से विफल होने के पश्चात् दो-एक अन्य स्वजनों ने निरंतर तथा अनवरत आक्रमण किये किन्तु सब के सब निराश होकर लौटे। रात के स्वप्न के कारण मैं प्रत्येक चेष्टा के बारे में यही समझती थी कि यह सफल होगी, किन्तु अन्त में हार ही होती थी।

(२)

दिन के कोई दो बजे का समय था कि अन्तिम चेष्टा भी विफल हुई, और थक कर हमारी ओर वाले भाग्य पर निर्भर हो गये। अब चारों ओर से निराश होकर सब रोने धोने से अपने दिल की भड़ास निकाल रहे थे। मेरी भी यही दशा थी। किन्तु

अब सिर से पानी गुजर चुका था। और वह मजमून था "रहा खटका न चोरों का दुआ देती हूँ रहजन को।" अब दुःख ही दुःख था। जब रोते-रोते थक गई तो यह खयाल आया कि यह होना था, और अब हो चुका। किन्तु क्या अच्छा न होता यदि किसी प्रकार मैं स्वयं पति से मिल कर अपनी निर्दोषिता तथा निरपराधिता का प्रमाण देती। कहने वालों ने निःसन्देह कहा होगा, किन्तु मेरी जबान से कैसे कह सकते थे। यह अभिप्राय नहीं कि वह मुझे ले जायँ किन्तु यह असम्भव है कि वह मेरी निरपराधिता पर विश्वास न करें, मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। अतः मुझे कहते हुए तनिक लाज न आयेगी, यह बातें मैंने बार-बार अपने मन में सोचीं। फिर यह सोचा कि यदि मैं कहूँ कि एक दुखिया हूँ, मुझे अपरिचित जान कर मेरी सहायता करो तो क्या सम्भव नहीं कि वह राजी न हो जायँ कि अब न सही दो-चार रोज बाद आकर मुझे ले जायँ। न सही एक नौकरानी की भाँति घर में पड़ी रहने दें। न मालूम ये बातें उनसे किसी ने कही भी हैं अथवा नहीं। क्योंकि इसके अतिरिक्त और मेरा हो ही क्या सकता है? अतः यह तथा अन्य इसी प्रकार के विचार मेरे मन में आये किन्तु समस्या यह थी कि कौन-सा उपाय करूँ। मैं अम्मा जान के पास पहुँची। वह बैठी रो रही थीं। मैंने उन पर स्पष्ट रूप से अपना इरादा प्रकट किया कि किसी भाँति यदि मैं मिल लेती तो क्या बुरा था। उन्होंने मेरी बातें सुनीं, ध्यान से सुनीं। कहने लगीं. यह सब व्यर्थ है किन्तु. मैंने कहा कि—"मैं विवाहिता पत्नी हूँ। और कहूँगी कि मैं विपत्ति में पड़ गई मुझे अब किसी प्रकार निकालो। मुझे साथ मत ले जाओ, किन्तु सहायता तो दो।" यह कह कर मैंने अपना दृढ़ निश्चय प्रकट किया और कहा कि "मेरा इस समय जाने पर बनी है। अन्य सब लोग चेष्टा कर चुके हैं, अब मुझे मेरे भाग्य

पर छोड़ दो।" यह कहकर जो मैं चली तो माता जी हड़बड़ा कर जाग-सी उठीं और कुछ आँखें फाड़ कर बोलीं—"क्या तू जायगी !!" मैंने कहा—"नहीं, मैं बुलाऊँगी, और न आये तो सोच लिया है मैंने कि.....।"

सिर हिला कर मैं चली आई और जल्दी-जल्दी एक पत्र लिखा :—

मेरे स्वामी !

आपका काफ़ी अपमान तथा बदनामी हो चुकी और अभी और होगी। आपने न मालूम क्या सुना है, किन्तु वास्तविकता ? क्या आपको मालूम है ? कदापि नहीं, फिर आखिर मुझे उल्टी छुरी से जबह करने का अर्थ क्या है, यदि आपमें स्वाभिमान है तो मैं आपकी विवाहिता पत्नी हूँ, मेरा भी यही कर्त्तव्य है, मामले की वास्तविकता तथा सचाई एक पत्नी कदाचित् सिवा पति के और किसी को नहीं बता सकती। फिर आप तक सचाई कैसे पहुँचती। किसी ने सच कहा है कि सुनी बातों पर विश्वास न करना चाहिए। कुछ करने से पूर्व यह देखना चाहिए कि केवल सुनी-सुनाई पर विश्वास करके किसी कार्य को कर डालना अच्छा है, अथवा सचाई मालूम करके। अतः यदि आपको सचाई और वास्तविकता का ज्ञान है तो मुझे मेरा हक़ दीजिए। अर्थात् कम से कम दो मिनट के लिए मुझसे मिल जाइए। और यदि बे-सोचे-समझे केवल सुनी-सुनाई पर कार्य करना है तो जो ख़ुदा की मर्ज़ी ! आपसे नहीं, मेरी क़िस्मत से शिकायत होगी। मैं फिर निवेदन करती हूँ कि आपका बहुत अपमान हो चुका तथा अभी और होगा, वरन् दो मिनट के लिए जाने से पहले मुझसे मिलकर सचाई और वास्तविकता तो मालूम कर जाइए। भविष्य में आपको अधिकार है, यथेष्ट।

आपकी अभागिनी।

आप कहेंगे कि यह पत्र अतिशयोक्त तथा चतुराई का नमूना है तथा पहेली बनाने की चेष्टा। तो उत्तर यह है कि हुआ करे। मुझे तो काम से मतलब। अतः इस पत्र को लिफ़ाफ़े में बंद करके वाल्दा साहबा से कहा कि आप किसी विश्वास-पात्र नौकर से भेजवा दीजिए। यह कहकर कि चुपके से एकान्त में दे दे। पत्र पर पता न लिखा। पत्र देते-देते मैंने कहा कि ज़बानी यह कहलवा दीजिएगा कि यदि आप न आये तो वह स्वयं आयेंगी। तथा यह कि वालिद साहब या चचा जान को सूचित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

(३)

एक वृद्ध नाई था, और वाल्दा साहबा को नज़र में वही उपयुक्त ठहरा। उसे बुलवा कर अम्मा जान ने कहा कि ख़लीफ़ा जी यदि काम बन गया तो सोने के कड़े तुम्हें पहनाऊंगी और यह लालच दिखा कर उसे पत्र देकर विदा किया। यह नाई बड़ा छतीसा, बड़ा बातूनी तथा अनुभवी था, वाल्दा साहबा को आशा हुई कि अवश्य किसी न किसी प्रकार यह बहला-फुसलाकर ले आयेगा, उसके जाते ही एक नवीन आशा ने मुझे आ घेरा, क्योंकि दिल गवाही देता था कि निर्दयी से निर्दयी पति भी मेरी विपत्ति में अवश्य मेरी सहायता करेगा, क्या आश्चर्य है कि कठिनाई दूर हो जाय।

घंटा भर बाद नाई असफल वापस आया। उसने पत्र तो जाकर दे दिया। उन्होंने पढ़ा भी एकान्त में; किन्तु फिर इस पत्र का ज़िक्र किसी से कर दिया। स्वयं पत्र क्या दिखा दिया कि विरोध का एक तूफ़ान-सा उठ खड़ा हुआ। ख़ूब तर्क-वितर्क हुआ। तथा जितने भी कुल के बड़े-बूढ़े थे उन्होंने कहा कि इसमें अवश्य कोई बड़ी भारी चाल है। बल्कि एक सज्जन ने तो प्रस्ताव किया कि

शीघ्रतम शीघ्र नगर छोड़ देना चाहिए। नहीं तो दूल्हा की जान की खैर नहीं। सारांश मना कर दिया और सख्ती से मना कर दिया। यह पूर्ण उत्तर था। नाई ने यह भी बताया कि पत्र अलबत्ता लेकर उन्होंने रख लिया है। और अपने एक मित्र थानेदार को पत्र दिखा कर कुछ बातें करता हुआ उन्हें छोड़ कर आया था। नाई ने स्वयं एकान्त में बातें करने की जो चेष्टा की तो लोगों ने लताड़ कर भगा दिया। अब नाई यह कहकर दोबारा रवाना हुआ कि अब मैं फिर जाता हूँ। और यदि मौक़ा मिल गया तो चोरी-छिप्पे से अकेले में बातें करके लिवा लाऊँगा।

यह था परिणाम! स्वयं मेरी अंतिम चेष्टा का। मैं दीवार की ओट से उस बुड्ढे नाई की बातें बड़े ध्यान से खड़ी चुपचाप सुन रही थी और बिलकुल नहीं रो रही थी, किंतु मेरी आंखों से आँसुओं की लड़ियाँ की लड़ियाँ बेखबरी में बहती चली जा रही थीं। मैंने एक ठण्डी आह भरी और चुपचाप अपने कमरे में आकर पलँग पर बेदम होकर गिर पड़ी और तकिए में मुँह छिपाकर अचेतनावस्था में रोने लगी।

नमालूम कितनी देर तक मैं इसी प्रकार रोती रही, यहां तक कि जाग्रत अवस्था में ही पिछली घटनाएँ मेरे सामने से होकर गुजर रही थीं, विचारों की गहराई में जागते में जैसे मैं डूब रही थी, तथा समस्त घटनाएँ एक-एक करके बाइसकोप की भाँति मेरे सामने से गुजर रही थीं। इन सारी चिन्ताओं का परिणाम क्या था? केवल यह कि इस बर्बादी के कर्ता-धर्ता ने मुझे भ्रष्ट करके कहीं का न रक्खा, ओ अभागे, अत्याचारी! खुदा का ग़ज़ब तेरे ऊपर फट पड़े, तेरे घर-बार पर आकाश टूट पड़े, तुझे तेरे अत्याचारों सहित पृथ्वी निगल जाय! सारांश उस दुराचारी नीच की घृणित शक्ल मेरी आँखों के सामने थी,

शीघ्रतम शीघ्र नगर छोड़ देना चाहिए। नहीं तो दूल्हा की जान की खैर नहीं। सारांश मना कर दिया और सख्ती से मना कर दिया। यह पूर्ण उत्तर था। नाई ने यह भी बताया कि पत्र अलबत्ता लेकर उन्होंने रख लिया है। और अपने एक मित्र थानेदार को पत्र दिखा कर कुछ बातें करता हुआ उन्हें छोड़ कर आया था। नाई ने स्वयं एकान्त में बातें करने की जो चेष्टा की तो लोगों ने लताड़ कर भगा दिया। अब नाई यह कहकर दोबारा रवाना हुआ कि अब मैं फिर जाता हूँ। और यदि मौक़ा मिल गया तो चोरी-छिप्पे से अकेले में बातें करके लिवा लाऊँगा।

यह था परिणाम! स्वयं मेरी अंतिम चेष्टा का। मैं दीवार की ओट से उस बुड्ढे नाई की बातें बड़े ध्यान से खड़ी चुपचाप सुन रही थी और बिलकुल नहीं रो रही थी, किंतु मेरी आंखों से आँसुओं की लड़ियाँ की लड़ियाँ बेखबरी में बहती चली जा रही थीं। मैंने एक ठण्डी आह भरी और चुपचाप अपने कमरे में आकर पलँग पर बेदम होकर गिर पड़ी और तकिए में मुँह छिपाकर अचेतनावस्था में रोने लगी।

नमालूम कितनी देर तक मैं इसी प्रकार रोती रही, यहां तक कि जाग्रत अवस्था में ही पिछली घटनाएँ मेरे सामने से होकर गुज़र रही थीं, विचारों की गहराई में जागते में जैसे मैं डूब रही थी, तथा समस्त घटनाएँ एक-एक करके बाइसकोप की भाँति मेरे सामने से गुज़र रही थीं। इन सारी चिन्ताओं का परिणाम क्या था? केवल यह कि इस बर्बादी के कर्ता-धर्ता ने मुझे भ्रष्ट करके कहीं का न रक्खा, ओ अभागे, अत्याचारी! खुदा का ग़ज़ब तेरे ऊपर फट पड़े, तेरे घर-बार पर आकाश टूट पड़े, तुझे तेरे अत्याचारों सहित पृथ्वी निगल जाय! सारांश उस दुराचारी नीच की घृणित शक्ल मेरी आँखों के सामने थी,

और मैं किटकिटा कर तथा दाँत पीस-पीस कर उसे कोस रही थी। दुःख तथा शोक ने एकदम से प्रतिशोध की प्रेरणा में वृद्धि कर दी। और साथ ही घृणा तथा अत्यन्त घृणित भावनाओं से ओत-प्रोत होकर मारे गुस्से के मैं बेक़ाबू हो गई।

फलतः मैं उस समय उसी गुस्से और तकलीफ़ में सर्प की भाँति बल खा रही थी कि अम्मा जान बच्चों की भाँति कमरे में लपक कर आईं तथा उनके मुँह से विचित्र स्वर में निकला—"वह आ रहा है।" और यह कहकर वह जिस फुर्ती से आई थीं, उससे भी शीघ्र हाथ के झटके देकर वापस चली गईं।

(४)

क्षण-भर तो मेरी समझ में न आया कि क्या करूँ, लपक कर मैंने अपनी दुलाई ओढ़ ली, शीघ्रता से दो-चार हाथ मारा कर मसहरी का चादर ठीक की। फिर बड़ी फुर्ती से मसहरी के अंतिम कोने पर कुछ सिकुड़ कर बैठ गई ताकि नवागन्तुक आत्माय मसहरी के दूसरे कोने पर अर्थात् मुझसे दूर हट कर बैठ सके। मैं प्रतीक्षा-मग्न थी। हृदय तीव्रगति से धड़क रहा था, तथा अत्यन्त तीव्रता से विचार मस्तिष्क की गहराइयों में दौड़ रहे थे। यह सोच रही थी कि भला क्या बातें शुरू होंगी। मैं इसी परेशानी में थी कि एकदम से मेरा हृदय बल्लियों उछलने लगा, अर्थात् द्वार पर खटका-सा हुआ तथा खटके के साथ स्वभावतः मेरी गर्दन झुक गई और हाथ ने बिना किसी इरादे के बढ़कर चादर से चेहरे को छिपा लिया। पर्दा हटने की सरसराहट हुई और मजबूत तथा नये जूते की चाप के साथ एक मर्दाने क़दम ने कमरे में प्रवेश किया .....मेरा मुँह छिपा हुआ था और गर्दन जैसे किसी ने जबर्दस्ती पकड़ कर झुका दी थी। किन्तु फिर भी मैंने रेशमी पतलून की मोहरी का

नीचे का भाग काले जूतों के सहित देखा। मैं उसी प्रकार सिमटी रही और वह मसहरी के कोने पर जान-बूझ कर मेरी ओर पीठ करके बैठ गये।

मैं चुप थी, यह सोच रही थी कि या अल्लाह! क्या कहूँ और क्या न कहूँ, परन्तु वह भी बिलकुल चुप थे। मैं घबरा रही थी; कुछ समझ में न आता था कि क्या कहूँ, इतने में धीरे से उन्होंने खाँस कर गला साफ़ किया। गोया स्वयं बोलेंगे। मैंने यह देख कर कि पीठ मेरी ओर है ज़रा साहस करके नज़र उठाई और चाहा कि चुपके से अपने पति के चेहरे का दर्शन कर लूँ किन्तु यह सम्भव न था.....कि इतने में सामने वाले बड़े आइने पर दृष्टि गई.....बस दृष्टि का पड़ना था कि विद्युत की भाँति मैं तड़पी और झपट कर इस ज़ोर से मैंने पीठ पर उनके दो हत्थड़ मारा है....."अरे निर्दयी।" एक चीख के साथ मेरे मुँह से निकला, तथा मैं अपने बदमाश और निर्दयी पति के गले से लिपट कर मूर्छित हो गई। वही जिसने कि मेरी मिट्टी ख़राब की थी और वही परम प्रिय निर्दयी जिसे मैं अभी-अभी कट-कट कर कोस रही थी।

चौदहवाँ परिच्छेद

दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना

मुझे होश आया है तो मैंने आँखें झपका कर ध्यानपूर्वक देखा कि कहीं स्वप्न तो नहीं है ! मुझे वही व्यक्ति बड़े प्रेम के साथ सँभाले हुए था जिसने मेरा जीवन अजीर्ण कर रक्खा था .....किन्तु अब !

ध्यान से सिर झुकाये प्रेम-मय मुस्कान से अपने हाथों से मेरा सिर सँभाले हुए मुझे देख रहे थे !

मैं बेदम थी, मगर मैंने इस ख्याल से कि कहीं यह स्वप्निल-अवस्था तो नहीं, अपने हाथ से धीरे से ललाट को छूकर देखा।

मुस्कराकर मेरे दग़ाबाज़ पति ने कहा—"देखती क्या हो ? वही चोट का चिन्ह है, जब तुमने ज़ोर से तिपाई घुमा कर मारी थी।"

ख़ुशी के दर्द से बेताब होकर मैंने कहा—"तुमने मुझे बहुत परेशान किया।" और इतना कहकर मेरी आँखों से आँसू निकलना शुरू हो गये। "मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगी।" यह कहकर मैंने कुछ परेशान होकर दोनों हाथों से उनकी मज़बूत कलाई पकड़ ली और फिर ज़ोर देकर रोते हुए कहा—"कदापि नहीं छोड़ूँगी।"

'अरे !" उन्होंने घबरा कर कहा—"ख़ुदा के लिए !"..... यह कहकर मुझे गले से लगा लिया।

"तुमने मुझे बहुत परेशान किया।" मैंने फिर उसी भाँति कहा।

"यह देखो।" उन्होंने अपनी अँगुली दिखाकर कहा, जिसमें मैंने काट खाया था, "यह देखो।" उन्होंने ज़ोर देकर मुस्कराते हुए कहा—"तीन महीने तक पका की, कटखनी कहीं की।" यह कहकर मुझे बैठा दिया।

मैं उठ बैठी और मैंने मज़बूती से कोट का दामन पकड़ लिया और आँसू पोंछ कर कदाचित् अत्यन्त कटु शब्दों में हार्दिक प्रसन्नता से कहा—"मुझे अभी ले चलो····· ···तुमने मेरी मिट्टी खराब की ····· ···तुम प्रथम श्रेणी के बदचलन और आवारा हो·····खूब-खूब तुम्हें मैंने कोसा है·····बड़े आवारा, बदचलन हो तुम !····· ···सख्त बदचलन।"

"मत बकवास करो।" मज़ाक में उन्होंने डाँटकर कहा—"क्या बदचलनी की है मैंने ? आखिर कौन-सी बदचलनी या आवारगी तुमने मेरी सुनी ? तुमसे किसी ने झूठ कह दिया ····· रालत·····बिलकुल रालत ··· ·····बताओ ·····बताओ····· आखिर बोलती क्यों नहीं हो ?"

मैं बेचारी क्या बोलती, प्रसन्नता के कारण मेरा हृदय खिंचा जा रहा था तथा मुझे अकस्मात् ध्यान आया कि बाल्दा साहबा से तो कह दूँ, यह विचार आते ही मैं उछल-सी पड़ी।

"कहाँ ?" उन्होंने कहा।

मैंने मुस्कराते हुए कहा—"अम्मा जान·····!"

"अरे ठहरो तो !" वह बोले—"क्या कहोगी आखिर।"

"क्यों ?" मैंने कहा, क्या कहूँगी ? यही कहूँगी, जो बात है·····लो और सुनो। ज़रा ठहर तो जाओ·····तुमने मेरे बाप-दादा को इज्ज़त दो कौड़ी की कर रक्खी है। ज़रा तुम्हारे मुँह पर कालिख तो लगे तब कहीं हमारी मुसीबत टले।"

यह कह कर मैं वालदा साहबा के पास पहुँची, वह मेरे लिए 'नफ़िल' (मुसलमानों की एक नमाज विशेष) पढ़कर दुआओं में तल्लीन थीं। मैं खम्भे के पास जो फ़ुर्ती से प्रसन्नता के कारण घबराई हुई पहुँची हूँ, तो मैंने उन्हें दुआ के लिए हाथ फैलाए रो-रोकर कोसते हुए सुना।

"..... .....खुदाया! जिससे मेरा अपमान किया उस पर ग़ज़ब इलाही टूटे.....।" मैंने इस मनहूस दुआ पर जल कर फ़ुर्ती से लपक कर उनकी कुप्रार्थना के लिए फैले हुए हाथों पर अपना हाथ मार कर कहा—"खुदा के लिए!.....मत कोसो।"

"हैं!" उन्होंने मेरी ओर अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखा।

"किसे कोस रही हो?" मैंने मारे खुशी के उन पर गिरते हुए कहा—"वही तो हैं.....वही निकले।"

बस इतना वाल्दा साहब का सुनना था कि पागलों की भाति मारे खुशी के उनके मुंह से चीख निकली और लपकीं वह जूते छोड़कर वालिद साहब की तरफ़। मैं भी फ़ुर्ती से पहुँची। मैं पहुँची हूँ तो वह कह चुकी थीं, और वह मारे खुशी के 'अरे' की एक चीख मार कर मूर्छित हो चुके थे। मैंने झाँक कर देखा और चुपके से वापस आई।

"कहो क्या हाल है? कह दिया आखिर तुमने?" उन्होंने मुस्कराते हुए मुझसे कहा।

मुझे उनका सूरत देखकर मारे खुशी के फिर रोना आ गया, और मैं रोती हुई दूसरे हाथ से अपना मुँह छिपाकर बैठ गई। मुझे गले से लगा लिया। बड़े प्रेम से मुझे सान्त्वना दी, तथा फिर मुझे सीधा कर के कहा :—

"अब मैं जाता हूँ, सब से छुप कर आया था।"

"मैं कदापि न जाने दूँगी।" मैंने कहा—"तुम फिर मुझे छोड़कर चल दोगे।" यह कहते हुए मैंने मानो अनुभव किया कि यह अब भागे उठ कर यहाँ से! और अब मैं झपटी उन्हें पकड़ने को कि कहीं मुझे बिलकुल ही न छोड़ कर चल दें। और इस विचार के साथ ही फिर मेरी आँखों से आँसू की लड़ियाँ बहनी शुरू हो गईं।

किन्तु मेरे 'बदमाश' पति ने मुझे हँसते हुए फिर गले से लगा लिया। चुमकारा, दिलासा दिया, प्रेम-युक्त क्षमा-प्रार्थना की तथा प्रेम का नमस्कार कर के विदा हुए कि अभी-अभी सब कुछ ठीक हो जायगा। "अल्लाह निगेहबान है।" उन्होंने मुस्कराते हुए कहा।

वह चले गये, मेरी आँखों से खुशी के आँसुओं का धारा बह रही थी। यथेष्ट

एक भाग्यशालिनी।

स्थाई ग्राहक बनिये

जैसे इंगलैंड में 'बुक क्लब' भिन्न-भिन्न प्रकाशकों से अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीद कर ग्राहकों को सस्ते दामों में देता है उसी प्रकार हमने भी भारतवर्ष में प्रकाशकों के अच्छी-अच्छी पुस्तकें लेकर ग्राहकों को देने का आयोजन किया है। इस समय हम अपनी "सार्वजनिक" सीरीज की पुस्तकें ही ग्राहकों को देंगे। इस माला में सन् १९४६ में हमने अठारह पुस्तकें, जिनमें ज्यादातर उपन्यास या कहानी-संग्रह होंगे, ग्राहकों को देने का प्रबन्ध किया है। हो सकता है कि यदि हमारा प्रयत्न सफल हुआ तो ज्यादा पुस्तकें भी हम इस माला में दे सकें।

माला के स्थाई ग्राहकों के लिए निम्नलिखित नियम होंगे :—

(१) माला के स्थाई ग्राहकों को केवल सार्वजनिक सीरीज की पुस्तकें ही पौने (२५ प्रतिशत कमीशन काट कर) मूल्य में मिलेंगी और डाकखर्च उन्हीं को देना होगा।

(२) माला के स्थाई ग्राहकों को १) रु० देकर हमारे यहाँ अपना ग्राहक-नम्बर दर्ज कराना होगा जो रुपया वापिस न होगा।

(३) सन् १९४६ की ३१ दिसम्बर तक उनको इस सीरीज की कम से कम कमीशन और डाकखर्च काट कर १०) रुपये की पुस्तकें अवश्य लेनी होंगी। जो ग्राहक दस रुपये की पुस्तकें न

ले सकेंगे वह सन् ४७ में ग्राहक न माने जायेंगे। जो लेंगे वह सन् ४७ में भी बिना कुछ और दिये ग्राहक बने रहेंगे।

(४) जब-जब इस माला में पुस्तकें बढ़ेंगी हम स्थाई ग्राहकों को उनकी सूचना देंगे।

(५) वाचनालय के लिए भी ये ही नियम लागू हैं।

(६) यदि कोई झगड़े की बात उठेगी तो हमारा ही निर्णय ग्राहकों को मानना होगा।

(७) इस माला में अब तक ७ पुस्तकें आ चुकी हैं :—
(१) खुरपा बहादुर १) (२) चमको २।) (३) साधना १॥) (४) वैम्पायर १॥) (५) जानी दुश्मन १॥।) (६) कूल किनारा ॥।) (७) साम्राज्यवादी जापान १।)। और पुस्तकों का आगामी प्रकाशनों में विज्ञापन देखिये।

यदि आपको ये शर्तें मंजूर हैं तो आज ही ग्राहक बन कर लाभ उठाइये।

५८ ९

पुस्तकस्थान • ५४ जीरो रोड • इलाहाबाद

प्रकाशक :—भारतीय प्रकाशक, इलाहाबाद।